मेरी धार्मिक खोज

लेखक :

परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज

प्रकाशिका :

आचार्या डॉ. कमला देवी

पता :

श्री जयमल सिंह एडवोकेट
कोठी नं. 332, सैक्टर 15-ए,
हिसार-125001 (हरियाणा)
फोन नं. 01662-244725

द्वितीय संस्करण : जनवरी, 2007

सर्वाधिकार सुरक्षित (मई, 2005)

मूल्य - 15/-

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	वन्दना	4
2.	प्राक्कथन	5
3.	भूमिका	9
4.	अध्यात्म ज्ञान में गुरु का स्थान	12
5.	सतगुरु का पद	13
6.	साधु व सन्त का स्वरूप	18
7.	विभिन्न धर्म सम्प्रदाय	23
8.	संस्कारों का प्रभाव	26
9.	विचार-शक्ति	29
10.	सभी अच्छे या बुरे कर्मों से मुक्त होने का सरल उपाय	32
11.	स्थूल, सूक्ष्म और कारण लोक	38
12.	इन लोकों के अनुभव का समय	43
13.	लोक-लोकान्तर व तत्व ज्ञान के आवश्यक आधार	44
14.	सत, अलख, अगम व अनाम का भेद	47
15.	योग-विधि	52
16.	परमात्मा के साकार व निराकार रूप	53
17.	तन्त्र व मन्त्र द्वारा अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति	58
18.	पूज्य महापुरुषों से विनम्र प्रार्थना	64
19.	महात्माओं से प्रार्थना करने का कारण	70
20.	मन, वचन व कर्म से पवित्रता	74
21.	सत ज्ञान दाता	81
22.	सार शब्द	85
23.	सतगुरु शरण	89
24.	राधास्वामी योग का शब्द	91
25.	मेरी धार्मिक खोज	93
26.	आरती	102

गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रहम तस्मै श्री गुरवे नमः।।

वन्दना

नमो सतगुरु सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अदभुतम् अद्वितीयम् अनुपम्।।

नहीं रूप कोई हैं सब रूप तेरे।
तेरी सब ही प्रजा और भूप तेरे।।

धरा सत अवतार जग को चेताया।
दु:खी-दीन को अंग अपने लगाया।।

दिया संग सत का मिला सत का जीवन।
तेरे नाम पर सीस तन मन है अर्पण।।

झुके राधास्वामी चरण हंसते-हंसते।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते-नमस्ते।।

प्राक्कथन

आज के इस आधुनिक युग में विभिन्न धर्म सम्प्रदाय व मत–मतान्तर अपने–अपने ढंग से धर्म का प्रचार कर रहे हैं फिर भी लोग शान्त कम व अशान्त अधिक दिखाई दे रहे हैं। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी तनावग्रस्त हैं और वे सुख शान्ति के लिए कभी ज्योतिषी, कभी तान्त्रिक तो कभी गुरूओं के पास भागते फिर रहे हैं। मैने भी इन सासांरिक झमेलों से छुटकारा पाने के लिए कई महात्माओं के सत्संग सुने, कई महात्माओं से मिली और कुछ के पास तो मुझे बहुत नजदीक रहने का अवसर भी प्राप्त हुआ। परन्तु मन को कहीं शान्ति नहीं मिली। अधिकतर महात्माओं में मुझे ''पर उपदेश कुशल बहुतेरे या दीपक तले अन्धेरा'' वाली बात ही नजर आई क्योंकि उनकी कथनी और रहनी में बहुत अन्तर था। इसी बीच मैने होशियारपुर वाले महाराज फकीर चन्द जी का साहित्य पढ़ा और उसे पढ़कर में बहुत प्रभावित हुई क्योंकि उनका पूरा साहित्य शास्त्रीय जटिलता से दूर उनकी अपनी रहनी व अनुभव के आधार पर लिखा हुआ था और मुझे तब तक इस बात का बहुत पश्चाताप हुआ कि मैं ऐसे महापुरूष के दर्शन करने से चूक गई। क्योंकि वह उस समय चोला छोड़ चुके थे। फिर मैने उन्हीं की पुस्तकों में लिखी ''जहां चाह, वहां राह'', मांगो और मिलेगा'' वाली पक्तियों के आधार पर उनकी मूर्ति के सामने सच्चे मन से प्रार्थना की कि मुझे तो आप जैसा ही महापुरूष चाहिए जो मुझे उस असली परमात्मा का भेद देकर उससे साक्षात्कार करवा दे और फिर मेरी यह प्रार्थना जल्दी ही फलीभूत हुई जब मेरा मिलाप उन्हीं के आश्रम में मेरे परम आराध्य, कुल

मालिक हजूर महाराज कैप्टन लालचन्द जी से हुआ जो धर्म – कर्म की जीती – जागती तस्वीर हैं। इन पर विश्वास करने में मुझे थोड़ा समय अवश्य लगा परन्तु उनके सान्निध्य में आने पर जब मुझे इनकी पूर्णता पर पूर्ण विश्वास हो गया और मेरी बुद्वि निश्चयात्मक बन गई तब कब और कैसे मुझे उस राम नाम की अनुभूति हो गई मुझे पता ही नहीं चला। यह सब इन्हीं की रेडियेशन का प्रभाव था। इसके लिए मुझे अधिक यत्न नहीं करना पड़ा। जिस प्रकार प्यासे को पानी से और भूखे को रोटी से तृप्ति मिल जाती है उसी प्रकार एक बहुमूल्य रत्न देकर इन्होने मेरी जन्म–जन्मान्तरों की आध्यात्मिक प्यास को शान्त कर दिया और मेरी भटकन समाप्त हो गई। मेरी तुच्छ जिव्हा तो इनका गुणगाान करने में सक्षम ही नहीं है। मैं तो बस यही कह सकती हूं कि मेरे यह कुल मालिक, सर्वाधार ज्ञान की वह मशाल है जो हर दिल को रोशन कर देती है और प्रेम व शान्ति का वह अथाह भण्डार है, जिसमें डुबकी लगाने से अशान्ति कोसों दूर भाग जाती है। क्योंकि जो भी दुखी जीव इनके पास आता है, वह इनकी रेडियेशन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इनके पास प्रेम की वह चुम्बकीय शक्ति है जो सभी को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है। शायद यही सच्चे सन्त सतगुरू की पहचान है। जैसे कहा है

गुरू और पारस में यही अन्तरो जान ।
वह लोहा कचंन करे गुरू कर ले आप समान ।।

प्रस्तुत पुस्तक ''मेरी धार्मिक खोज'' भिन्न–भिन्न धर्म – सम्प्रदायों के आपसी मतभेद, नफरत, घृणा व द्वेष भाव को दूर करने व महात्माओं के सच्चा पथ – प्रदर्शक बनने के उदेश्य से

लिखी गई है। क्योंकि आज जगह–जगह धर्म के नाम पर धोखा, छल कपट व आडम्बर फैल रहा है और लोग धर्म सम्बन्धी वास्तविक सच्चाई से अनभिज्ञ रहने के कारण इधर उधर भटक रहे हैं और कट्टरपंथी बन रहे हैं। इसी अज्ञानता के कारण लोग मन्दिर, मस्जिद, आश्रम व गुरूद्वारों में जाकर सेवा करने को तैयार हैं परन्तु घरों में आपस में एक – दूसरे की सेवा व मदद को तैयार नहीं है। घरों में सास – बहु की नहीं बनती है, भाई–भाई का दुश्मन बन रहा है, बूढ़े बेचारे लाचार हो रहे हैं यानी घरों की जिन्दगी नरक बनती जा रही है। अब प्रश्न यह उठता है कि धर्म के इतने प्रचार के बाद भी इन महात्माओं की शिक्षा आखिर क्यों नहीं इस समाज को बदल पा रही है। क्योंकि अधिकतर शिक्षा देने वाले स्वयं आर्दश रूप नहीं है और न ही इस शिक्षा को लेने वाले अधिकारी ही उचित है। दूसरा जैसे नस्ल को सुधारने के लिए बीज को बदला जाता है, उसी तरह इस आज की पीढ़ी को बदलने के लिए सन्तानोपत्ति पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है जिससे भावी पीढ़ी का सुधार बीज रूप से ही हो सके। इसके लिए मेरे गुरू महाराज जी ने 'सुखी जीवन का रहस्य' नामक पुस्तक में बड़ा स्पष्ट वर्णन किया है तथा इसके अतिरिक्त और भी बहुत से कारण हो सकते हैं। इन्हीं सब बातों के समाधान के लिए इस पुस्तक में सभी धर्मों के आपसी मतभेद को दूर कर, प्रेम प्यार से रहने का सन्देश दिया गया है और इसके लिए मुख्य योगदान महात्माओं का ही हो सकता है। साथ ही इस पुस्तक में प्राचीन काल से चले आ रहे धर्म सम्बन्धी रहस्य के पर्दे को हटा कर चित्र को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है, ताकि सभी जीव सुख शान्ति का जीवन बिता सकें। धर्म के जिज्ञासुओं के लिए यह

पुस्तक काफी लाभदायक सिद्ध होगी क्योंकि उनके धर्म सम्बन्धी अनेक सन्देहों का समाधान उन्हें इस पुस्तक में मिल जायेगा। इस पुस्तक को पढ़कर प्रत्येक प्राणी को शान्ति मिले और उनके भ्रम व शंकाओं का निवारण हो, यही इस पुस्तक को लिखने का मुख्य प्रयोजन है।

पुस्तक के प्रकाशन में मुख्य भूमिका निभाने वाले मेरे भ्राता श्री एडवोकेट जयमल सिंह जी अति धन्यवाद के पात्र हैं और आर्थिक योगदान के लिए हमेशा अग्रसर रहने वाले आचार्य एस.ई जिले सिंह सांगवान जी का सहयोग भी सराहनीय है। इसके साथ ही वीना गुप्ता सुपुत्री श्री जेसी. गुप्ता (Ireland West Brownwich, U.K.) के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूं जिन्होंने पर्याप्त राशि देकर हमें कृतार्थ किया है।

डा० कमला देवी
प्राध्यापिका, एम.एम. कालिज, फतेहाबाद
दूरभाष : 01667–225520
मोबाईल : 9416475568

भूमिका

आज इस बुद्धि व विज्ञान के युग में मनुष्य सभी आवश्यक सुविधाओं के होते हुए भी अशान्त व चिन्तित है और जब वह इन सासांरिक व मानसिक दुःखों से छुटकारा पाने के लिए किसी महापुरूष का आश्रय लेता है तो वहां पर भी उसे धोखा व आडम्बर ही अधिक दिखाई देता है। दूसरा, आए दिन अखबारों में या दूरदर्शन पर इन महात्माओं के कुकर्मों की चर्चा पढ़ने व देखने को मिलती है जिससे लोगों का धर्म के प्रति विश्वास ही खत्म होता जा रहा है। निबल, अबल, अज्ञानी जीवों के लिए यही एक उत्तम सहारा था परन्तु यहां पर भी उन्हें पाखण्ड अधिक व सच्चाई कम नजर आती है। तीसरा, ये सभी भिन्न–भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय एकता के स्थान पर आपसी भेदभाव, कटट्रता, नफरत व घृणा–द्वेष को अधिक बढ़ावा दे रहे हैं। जीव बेचारे अज्ञानता में कभी एक गुरू के पास तो कभी दूसरे के पास भटक रहे हैं परन्तु उन्हें शान्ति कहीं नहीं मिल रही है।

इन सब घटनाओं को देखकर मैं अपने विचार इस पुस्तक में लिखने को विवश हुआ हूं और धर्म का प्रचार करने वाले सभी महात्माओं को यह कहना चाहता हूँ कि वे अपने सत्संगों में धर्म का सही प्रचार करें व सच्चाई बताएं और वह सच्चाई यह है कि परमात्मा एक है और वह अंश रूप में प्रत्येक मनुष्य के अन्दर है। हर मनुष्य अपने–अपने विश्वास के अनुसार अपना इष्ट बनाकर उस परमात्मा की पूजा करता है और उनके विश्वास के अनुसार उनका

मन वह रूप बनाकर उनकी मदद करता है। राम का विश्वास रखने वालों में राम, देवी – देवता का विश्वास रखने वालों में देवी–देवता और गुरू का विश्वास रखने वालों में गुरू का रूप प्रकट होकर उनकी मदद करता है जो वास्तव में उनका मन ही होता है। परन्तु अभी तक यह बात रहस्य में ही चली आ रही है। सिवाय मेरे गुरू महाराज के यह रहस्य और किसी ने नहीं खोला है। अतः इसी अज्ञानता के कारण यह भिन्न–भिन्न धर्म–सम्प्रदायों में आपसी झगड़े व वाद – विवाद हैं। अज्ञानी जीव अपने पंथ, मत व इष्ट को श्रेष्ठ व दूसरे को निम्न समझते हैं और आपस में लड़ते झगड़ते हैं। मनुष्य के लिए मनुष्य की सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। जो मनुष्य मनुष्य की सेवा छोड़कर किसी और देवी – देवता या गुरू की पूजा व सेवा करते हैं वह गलती पर हैं। यह बात जीवित अनुभवी महापुरूष ही बता सकता है। जैसे कबीर साहब ने कहा है :–

जोगी जती यती सन्यासी, आप आप में लड़िया ।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, शब्द लखे सोई तरिया ।।

इसलिए मेरा इन भिन्न–भिन्न धर्म सम्प्रदायों के महात्माओं से यह निवेदन है कि वे मन – वचन – कर्म से पवित्र होकर, इस तत्व ज्ञान का खुद अनुभव करके, जीवों का कल्याण करते हुए इस पद की शोभा बढ़ाएं और इसे अपमानित होने से बचाएं क्योंकि आज का बुद्धिजीव मनुष्य अन्ध विश्वास नहीं कर सकता। वह हर बात का प्रमाण चाहता है। जैसे आज के वैज्ञानिक हर क्षेत्र में अपने आविष्कारों का प्रमाण दे रहे हैं, उसी प्रकार महात्मा लोग अपने सत्संगों में केवल

शास्त्रों की पुरानी बातें न दोहरा कर, धर्म के विषय में प्रमाण सहित अपना अनुभव बताएं और समय–समय पर आपस में मिलकर इस विषय पर विचार – विमर्श करें तथा अज्ञानी जीवों के धर्म–सम्बन्धी भ्रम व शंका को दूर करें ताकि यह मनुष्य जाति आपसी मतभेद को समाप्त कर, एकता में रहकर अपना जीवन सुख शान्ति से बिता सके। यही मेरा इस पुस्तक को लिखने का प्रयोजन है।

मेरी यह ह्रादिक इच्छा है कि सभी महात्मा इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और यदि मैं कहीं गलती पर हूं तो वे मेरा मार्गदर्शन करें। मैने अपने अनुभव के आधार पर मानव कल्याण की भावना से इस पुस्तक को लिखा है, दावा किसी बात का नहीं है।

आपका हितैषी
कैप्टन लालचन्द
गांव दांदू, जिला चुरू (राजस्थान)
दूरभाष :– 01562–283121, 283521

अध्यात्म ज्ञान में गुरू का स्थान

आत्मा–परमात्मा की खोज करने के विषय को अध्यात्म ज्ञान कहा गया है। अध्यात्म ज्ञान के लिए गुरू की अति आवश्यकता है जो समय के साथ–साथ मनुष्य की प्रकृति, संस्कार व अधिकार के अनुसार सहज विधि का मार्ग दर्शन करता है। गुरू अपने सत्संग में मनुष्य को सही समझ देता है, विवेक देता है, अन्दर अनुभूति करा देता है और ज्ञान देता है जिससे मनुष्य हर समय प्रसन्नचित व बेफिक्र रहता है तथा वह जो भी काम करता है वह बहुत लगन व खुशी से करता है यानी मनुष्य की जीवन शैली खुशी आनन्द में बदल जाती है। यह ज्ञान किसी पूर्ण अनुभवी गुरू की कृपा से ही मनुष्य को मिलता है। कोई देवी – देवता व ईश्वर – परमेश्वर मनुष्य को यह ज्ञान नहीं दे सकता है। मनुष्य का गुरू मनुष्य ही हो सकता है। जिसने खुद यह ज्ञान प्राप्त किया हुआ हो, वही दूसरे को ज्ञान दे सकता है। देवी – देवता व परमात्मा के विश्वास से मनुष्य को सिद्धियां अवश्य मिल सकती है। ज्ञान तो गुरू से ही मिलेगा।

आज के युग में गुरूओं की कमी नहीं है और उनके सत्संगों में शिष्यों की बहुत भीड़ देखने को मिलती है फिर भी मानव अशान्त और उदास है। जहां तक मेरा अनुभव है, इसके बहुत से कारण हैं। जैसे किसी रोगी को स्वस्थ करने के लिए कई वस्तु सहायक हैं परन्तु मुख्य तो पूर्ण अनुभवी डाक्टर है जो रोग को पहचान कर उसकी दवा दे दे। इसी तरह अध्यात्म ज्ञान के लिए पूर्ण अनुभवी गुरू की आवश्यकता है जो शिष्य की प्रकृति व संस्कार को समझकर उसको ज्ञान दे। सबको एक ही विधि बताना ठीक नहीं होगा। मैं सन् 1962 से सत्संग कराता आ रहा हूं परन्तु आज तक केवल आत्म–ज्ञान या अध्यात्म–ज्ञान के लिए कोई नहीं आया है। दुनिया के काल–कर्म

का मारा हुआ मनुष्य सत्संगों में जाता है। सत्संगों में उनके कष्ट का कारण और उससे छुटकारे की विधि बताना सतगुरू का काम है। यह काम अध्यात्म के अनुभवी महापुरूष करते है। उनकी रहनी क्या हो? और वह सत्गुरू कैसा साधक हो? इसे मैं कबीर साहब के एक शब्द से आपकी सेवा में बताने का यत्न करूंगा। क्योंकि कबीर साहब को सभी मानते हैं। यह सतगुरू वक्त गुरू तथा अध्यात्म ज्ञान का अनुभवी महापुरूष कैसा हो? जो मनुष्य के सब कष्टों को समझकर, ज्ञान देकर उन्हें दूर कर सकें। यह सतगुरू वह महान् पुरूष है जो जीव के सब प्रकार के भ्रम–शंकाओं को दूर कर उसे असली भेद बता दे जैसे :–

''गुरू मिले तो भ्रम नसाहि।''
''घट में घट दिखलाय दे, सो सतगुरू पुरूष सुजान।''

सतगुरू का पद

कबीर साहब की वाणी में सतगुरू का पद बहुत बड़ा बताया है जैसा नीचे के शब्द में लिखा है।

''सतगुरू निर्वाणी निर्वाणी निर्वाणी''

अष्ट सिद्धि नौ निद्वि करै मजूरी और विधाता रानी।
चांद सूरज दो जले चिरागी, सुरत गगन गहरानी ।।

चार वेद और नौ व्याकरण, अष्टादश पुराणी ।
इनसे साहिब अगम अगोचर, गुरूमुख विरला जानी ।।

अर्थ धर्म और काम मोक्ष जाके फिरै बैल ज्यों धाणी।
सच्ची भक्ति बिन चार पदार्थ काग भीष्ट सम जाणी ।।

शेषमुखा से शेष रटत है, वह भी भेद न जानी।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह सतगुरू की वाणी।।

अब आप ही समझ लें कि कबीर साहब ने सतगुरू को क्या माना है ? वैसे उनकी वाणी में साफ कहा है कि सतगुरू ही है जो परमात्मा के रूप का अनुभव करा देता है। जैसे कहा है:–

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, का के लागूं पाय।
बलिहारी गुरू देव की, जो गोविन्द दियो लखाय।।

प्यारे पाठको। खेल तो सब परमात्मा की ही शक्ति का है परन्तु वह क्या है? उसको किसी ने देखा नहीं है। जो परमात्मा के दीदार के दीवाने हैं, उनकी यह प्यास सतगुरू ही बुझाता है। जो हमारे ही जैसा मनुष्य शरीर धारण करके सतगुरू के रूप में आकर हमको सतगुरू का दर्शन करा देता है। परमात्मा अंश रूप में हमारे ही अन्दर है परन्तु वह हमें नजर नहीं आता है। अतः सतगुरू हमको बताता है कि वह हमारे अन्दर ही विद्यमान है परन्तु वह दिखाई नहीं देता है जिसे गुरू नानक जी ने कहा है :–

घट में है सूझत नहीं लानत ऐसी जिन्द।
नानक इस संसार को हुआ मोतिया बिन्द।।

सतगुरू का यह बड़प्पन है कि वह हमारी प्रकृति व संस्कार के अनुसार सहज योग की सहज विधि हमको बता देता है जैसे एक अनुभवी डाक्टर हमारे रोग को समझ कर हमें सही दवा दे देता है और हम जल्दी ही स्वस्थ हो जाते हैं। आज जो यह आश्रमों में शिष्यों की भीड़ दिखाई देती है यह तो एक भेड़चाल है। न तो शिष्य गुरूओं के पास अध्यात्म ज्ञान के लिए आते हैं और न गुरू ही यह सतगुरू वाला काम करते हैं। गुरू शिष्यों को सुमिरन, ध्यान का सहारा दे देते हैं और जैसा किसी का विश्वास होता है वैसा उसका

दुनिया का काम हो जाता है और साथ ही गुरू महाराजों को भी मान–सम्मान व धन मिल जाता है। अब यदि गुरू चाहें तो अपना डेरा, आश्रम खूब बड़ा बना सकते हैं और चाहें तो अपनी सन्तान के लिए जायदाद बना सकते हैं या देश विदेश के सैर सपाटे कर सकते हैं। मैं इन भीड़ भड़ाकों में कोई अध्यात्म नहीं देखता हूं। हां, एक दो अधिकारी जीव हो सकते हैं जिनकी यहां कोई चर्चा नहीं है।

तो सतगुरू की महिमा यह है कि वह खुद निर्वाणी होता है और शिष्य भी उसके दर्शन तथा सत्संग से इस मनुष्य जीवन का आनन्द लेते हुए उस निर्वाण पद का अनुभव कर लेता है। सतगुरू के असली रूप को बताने के लिए कबीर का एक अन्य शब्द है जो इस प्रकार है :–

भाई कोई सतगुरू सन्त कहावै जो नैनन अलख लखावै ।।

डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेश दृढावै।
प्रान–पूज्य किरिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै।।

द्वार न रूंधे पवन न रौके, नहीं अनहद उरूझांवै।
यह मन जाय जहां लग जब ही, परमात्म दरसावै।।

कर्म करे निकर्म रहै जो, ऐसी जुगत लखावै।
सदा विलास त्रास नहीं मन में, भोग में जोग जगावै।।

धरती त्याग आकाश हूं त्यागै, अधर मढैया छावे।
सुन्न शिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावै।।

भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि ना आवै।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागमन मिटावै।।

यह सतगुरू की सहजावस्था की चर्चा है जिसका अनुभव न डोलने से डिगता है, न बोलने से और न ही जब वह उपदेश देता है तो वह बिसरता है। ऐसा सतगुरू जीव को इस परम आनन्द और परम शान्ति प्राप्त करने वाले ज्ञान का सहज ही अनुभव करा देता है। इसका प्रमाण यह है कि जब मैं मेरे सतगुरू परम सन्त पण्डित फकीर चन्द जी के दर्शन करने होशियारपुर गया था तब उनकी संगत से 15 या 20 मिनट में मुझे उस ज्ञान की अनुभूति हो गई थी और अब 82 साल की आयु में भी सहज ही अनुभव बना रहता है। किसी प्रकार के यत्न की आवश्यकता नहीं रहती है। यानी चलते फिरते, खाते पीते तथा जीवन के सब काम करते हुए इसका अनुभव बना रहता है। इस अवस्था की चर्चा शास्त्रों में भी है। जैसे कहा है :–

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यान धारणा।
अधमा तीर्थयात्रा मूर्ति पूजा च धमाधमा।।

इसका भाव यह है कि सहजावस्था सबसे उत्तम योग है जिसमें चलते, फिरते व संसार के सब काम करते हुए अनुभव बना रहता है। जब हम आसन लगाकार आंख, कान, मुंह बन्द करके साधन करते हैं तो यह मध्यम दर्जे का साधन है। तीर्थ यात्रा अधमा यानी नीचे दर्जे का है और बिना समझ, विवेक व अन्तर के अनुभव के की गई मूर्ति पूजा सबसे निम्न स्तर का योग साधन माना है। वैसे सभी साधन अपने–अपने स्थान पर मनुष्य की योग्यतानुसार मैं ठीक मानता हूं। यह जो सहजावस्था की चर्चा है, यह बहुत कम लोगों के साथ घटित होती है। अतः इसकी चर्चा कम है। साधन की यह विधि कबीर साहब ने अपने एक शब्द में और भी की है। जैसे कहा है :–

सन्तो सहज समाधि भली।

गुरू प्रताप भयो जा दिन से, सुरत न अन्त चली।
आंख न मूंदु कान न रूंधू, काया कष्ट न धारू।
खुले नयन से हंस–हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारू।।

कहूं सो नाम सुनू सोई सुमिरन, खांऊ पींऊ सो पूजा।
गृह उद्यान एक सम देखूं, भाव मिटाऊं दूजा।।

जहां–जहां जांऊ सोई परिक्रमा, जो कुछ करूं सो सेवा।
जब सोऊं तब करूं दण्डवत, पूजूं और ना देवा।।

शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहूं न बिसरे, ऐसी ताड़ी लागी।।

कहे कबीर यह उनमुन रहनी, सो परगट कर गाई।
दुख–सुख से एक परे परम पद, तेही सुख रहा समाई।।

यह योग साधन सहज है। इसमें मनुष्य की ध्यान शक्ति सहज में उपर की तरफ खिंची रहती है और जीवन में जो भी काम वह करता है, सहज होता रहता है। यह एक मुक्तावस्था है। राधास्वामी वाणी में ऐसा कहा है :–

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के मांहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुंह की हाजत नाहिं।।

यह एक जीवन शैली है जिसको मैने अपने जीवन में दुनिया के सब काम करते हुए बहुत ही सहज में अनुभव किया है और अब 82 वर्ष की आयु में भी अति उमंग व प्रसन्नता से जीवन के परम आनन्द को भोग रहा हूं। मैं प्रवृति और निवृति दोनों मार्गों का अनुभव कर रहा हूं।

जो सज्जन भगवां वस्त्र पहन कर, घर–बार, बाल–बच्चे छोड़कर, दाढ़ी–केश रखकर या शरीर का कुछ वेष बनाकर अपने को सन्यासी बनाकर यदि कोई विशेष आनन्द, शान्ति का अनुभव करते हों तो उनकी बात तो वही सज्जन जाने परन्तु मैं तो गुरू कृपा से इसी गृहस्थ जीवन में उस परम आनन्द व परम शान्ति का अनुभव सहज में ही करता रहता हूं। इसके लिए न तो मैने कोई शरीर का वेष बनाया और न ही मुझे घर त्यागने की ही जरूरत हुई और न ही मेरा यह कोई दावा है कि जिस साधन की विधि का प्रयोग करके मैने यह अनुभव किया है, यही सच्चाई है। यह तो मेरा अनुभव है। मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी ने कहा था कि जो तुम अनुभव कर रहे हो, यही भजन है और यही वह नाम है जिसकी धर्म–कर्म में चर्चा है। मन, वचन और कर्म से शुद्व रह कर यह करते रहो, एक दिन मंजिल पर पहुंच जाओगे। वैसे तो हर समय सहज जीवन धारा जो शरीर में है, उसका अनुभव बना रहता है परन्तु यह शरीर छोड़ने पर जो आत्म–तत्व के परमात्व–तत्व में लीन होने की बात है, कुछ कह नहीं सकता हूं। अनुमान से यही बात कही जा सकती है कि उस समय यदि सुरत शब्द वाला अनुभव रहा तो उसमें लीन हो जाऊंगा और न रहा तो जैसे गुरू की मौज होगी, उसी में खुश हूं।

साधु व सन्त का स्वरूप

अध्यात्म ज्ञान में सन्त की बहुत महिमा है। वैसे जो आत्मा–परमात्मा संबंधी अध्यात्म ज्ञान का प्रवचन होता है, उसको सुनने वालों को सत्संगी कहते है। जो महात्माओं के प्रवचन सुनकर उनसे साधन की विधि सीखकर, अध्यात्म ज्ञान का अनुभव करने की नियमित योग–विधि से जो अभ्यास करते हैं, उन योगी सज्जनों

को साधु कहा जाता है। वह चाहे घर–गृहस्थी में रहते हुए संसार का काम–काज करते हो या एकान्त स्थान पर बैठ कर या साधु जैसी शरीर की कोई वेश–भूषा बनाकर यह करते हों। सन्त मत में सब योग–साधना करने वाले सज्जनों को अपनी रोजी–रोटी कमा कर खाने का आदेश है और साधारण वेश–भूषा रखते हुए, समय मिलने पर सुबह–शाम योगसाधन करने की आज्ञा है।

इन साधन अभ्यास करने वाले योगी सज्जनों में कोई गुरू आज्ञा से प्रवचन करते हैं और कोई गुरू गद्दी पर बैठकर गुरूवाई का काम भी करते है। इनको गुरूमुख कहते हैं। कोई–कोई हंस या परमहंस भी कहलाते है। यानी यह योग–साधना करने वाले कई तरह से अभ्यास करते हैं जिसका अर्थ मन को शुद्ध व पवित्र करने से है। अब इन साधना करने वाले महात्मा सज्जनों की प्रकृति, संस्कार और मन की एकाग्रता के अनुसार उनके साधना के अनुभव होते है।

मेरे अनुभव में यह आया है कि सब के अनुभव भिन्न–भिन्न होते है। जैसे–जैसे संस्कार जिसके मन पर पड़े हुए होते है, उसके अनुसार ही उसके विश्वास के अनुरूप उसे चमत्कार, दृश्य व अनुभव होते है। और जैसा–जैसा समय आया, इन अध्यात्म ज्ञान का अध्ययन करने वाले सज्जनों के नाम भी देश काल और उस प्रान्त के अनुरूप बदलता गया। और देशों की चर्चा करने से तो यह चर्चा लम्बी हो जायेगी। अपने भारत के हिन्दू धर्म को ही देख लो कि यह कितने सम्प्रदायों में बंट गया और यहां के साधकों के कितने नाम रखे गए हैं। जैसे – ब्राहमण, पण्डित, साधु, महात्मा, काजी, नवी, बली आदि सैकड़ों नामों से यहां अध्यात्म विषय की साधना करने वालों को बोला जाता है।

जहां तक सन्त की चर्चा है, यह अध्यात्म ज्ञान के योगी–महात्माओं की एक जीवन शैली है। सन्त का अर्थ है जो जीवन की हर स्थिति में सम बना रहता है यानी किसी भी कठोर या प्रतिकूल स्थिति में उसके मन का सन्तुलन बिगडता नहीं है। वास्तव में इस जीवन–शैली वाला लाखों में कोई एक होता है जो सन्त गति की समस्थिति में जीवन–लीला करता है परन्तु भक्त और श्रद्धालु अपने–अपने गुरू–पीर को तथा साधारण साधु महात्मा को भी आमतौर पर ही अपनी–अपनी श्रद्धा के अनुसार सन्त कह देते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। जैसे मेरी परम विश्वासी आचार्या डा0 कमला है जिसने मेरी कई पुस्तकें छपवाई हैं। उसने मेरी पुस्तकों पर मुझे परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज की पदवी दी है। यह डा0 कमला का मेरे प्रति विश्वास है। इसी ही तरह भक्तों का अपने–अपने गुरूओं के प्रति विश्वास होता है और वे अपने आध्यात्मिक गुरूओं को नए–नए विशेषण लगा कर चार चांद लगा देते है और होना भी ऐसा ही चाहिए। साधु–सन्त के विषय में कबीर साहब ने कहा है –

साधु मिले तो एक फल सन्त मिले फल चार।
सतगुरू मिले अनेक फल कहे कबीर विचार।।

साध हमारी आत्मा हम साधन की देह।
लखा जो चाहे अलख को इनमें ही लख ले।।

अलख पुरूष की आरसी इन साधन ही की देह।
लखा जो चाहे अलख को इनमें ही लख ले।।

पारस और सन्त में यही अन्तरों जान।
वह लोहा कंचन करे गुरू कर ले आप समान।।

प्यारे पाठको। मैं स्वयं इस समस्थिति में हर समय नहीं रहता हूं। बाहर के प्रभाव मेरे मन पर प्रभाव डालते है जबकि मैं इस समय लगभग पूर्णकाम योगी की स्थिति में जीवन जीता हूं। फिर भी डा0 कमला ने कई बार मुझे कहा कि आप अपना अनुभव जरूर लिखो। यह बाहर का प्रभाव नहीं तो और क्या है? जबकि मैं जानता हूं और मेरा अनुभव है कि सच्चाई न तो लिखी जा सकती है और न बताई जा सकती है केवल किसी अनुभवी पुरूष की संगत में बैठकर अनुभव की जा सकती है। और वह भी ऐसा सज्जन हो जिसके मन में इस सच्चाई की लगन व तड़फ हो। अतः इसी सन्दर्भ में जीवों के कल्याण के लिए मुझे मन के मण्डल पर आकर ये पुस्तकें लिखनी पड़ी जबकि सन्तगति इससे उपर है।

सन्त गति में रहने वाला सन्त पृथ्वी पर परमात्मा का ही साक्षात् रूप होता है। ऐसे सन्त से विकिरण धारा सहज में निकलती रहती है और उसकी उस समस्थिति मे जो भी सहज में उसके विचार होते हैं, वह बहुत शक्तिशाली होते हैं और वह विचार की धारा अधिकारी सज्जनों के विचार में आकर काम करती रहती है। सन्त, मनुष्य रूप में एक बहुत महान शक्ति होती है क्योंकि वह समस्थिति में अधिक समय रहता है। जब विचारों या संकल्प के मण्डल में आकर कोई विचार, भाव के कारण कुछ बोलता या विचारता है तब उसकी Radiation यानी विकिरण धारा बहुत शक्तिशाली होती है।

मैं अपना अनुभव, एक साधारण सत्संगी के विचार शक्ति का उदाहरण देकर आपकी सेवा में लिखता हूं। पण्डित फकीरचन्द जी महाराज का एक विश्वासी सज्जन जो मेरे गांव का ही रहने वाला है, मेरे प्रति भी विश्वास रखता है। उसने एक दिन मुझे कहा कि आपने परमदयाल फकीरचन्द जी के ज्ञान की बहुत कमाई की है

अतः आप अपना अनुभव एक पुस्तक में लिख दो ताकि आने वाली पीढी के लोगों के कुछ काम आ सके। मैंने उसको कहा प्यारे भाई। यह ज्ञान महात्माओं ने बहुत सुन्दर पुस्तकों में पहले ही लिखा हुआ है। आखिर में उस सज्जन ने मेरे एक लड़के और उसकी पत्नी को भी यही बात कही परन्तु उन्होंने भी कोई विचार नहीं किया। परन्तु वह विचार उस सज्जन के मन में रहा और वह मेरी शिष्या डा0 कमला के दिमाग से टकराया जिससे डा0 कमला ने मुझसे कई बार प्रार्थना की कि मैं यह अपना अनुभव पुस्तक रूप में लिखूं। संक्षेप में यह समझे कि यह मेरे सत्संगों का संग्रह और पुस्तकें केवल उस सज्जन के विचारों का फल है जो लगभग तीस हजार प्रतियां छप चुकी है और बहुत छपनी है। अब आप खुद ही सोच लें कि एक साधारण सत्संगी के विचार में इतनी शक्ति हो तो सन्त पुरूष के विचार भाव में कितनी शक्ति हो सकती है? आप स्वयं समझ लें।

मैं तो अपने विषय में यही कह सकता हूं कि मैं अभी तक पूरा सन्त नहीं बन सका क्योंकि बाहर के प्रभाव मुझ पर असर करते है। हालांकि मैं जल्दी ही सम्भल जाता हूं परन्तु फिर भी एक बार तो विचारों में गिर जाता हूं। मेरे प्रति विश्वास रखने वाले पता नहीं मुझमें क्या–क्या रिद्धि–सिद्धि बताते हैं परन्तु मैं अपने अन्दर कुछ नहीं देखता हूं। यह तो उन सज्जनों की ही श्रद्धा, विश्वास का फल होता है।

गुरू कृपा से यह जीवित मुक्ति, निर्वाण या मोक्षपद बहुत कम समय में ही मेरे अनुभव में आ गया था। अतः यह जीवन बहुत ही आसान हंसते, खेलते गुजरता रहा और इस जीवनलीला में किसी भी समस्या या कठिनाई का भान बोध ही नहीं हुआ। यह महात्मा सज्जन जो इस दुनिया में कष्ट, तकलीफ या कठिनाई

बताते हैं, हो सकता है उनको कोई दुख या तकलीफ रही हो परन्तु मैंने अपने जीवन में कोई दुःख या तकलीफ वाली बात ही नहीं समझी। मैंने इस जीवन के खेल को एक सुन्दर स्वपन की तरह अनुभव किया है। कल की कुछ कह नहीं सकता हूं कि क्या गुजरे? गुरू की मौज का खेल है। गुरू के स्वरूप की खुली व्याख्या मेरे गुरू महाराज पं. फकीर चन्द जी ने की है वरना महात्माओं ने इसे भी रहस्य में ही रखा। भोली भाली संगत देहधारी गुरू के ही स्वरूप को ही असली स्वरूप मानती है किन्तु असलियत कुछ और ही है। जब साधक ध्यान करते करते अपने अन्तर में प्रकाश देखता है तो वह प्रकाश गुरू के चरण हैं। गुरू के स्वरूप को केवल अनुभव किया जा सकता है। उसकी व्याख्या शब्दों में हो नहीं सकती। देहधारी गुरू का स्वरूप ध्यान ठहराने का एक माध्यम है हां यह निश्चित है कि देहधारी गुरू से प्यार नहीं तो अन्तर की चढ़ाई नहीं हो सकती और उस मालिक के दर्शन यानी गुरू के स्वरूप का अनुभव हो नहीं सकता। इसीलिए इसको प्यार का मार्ग कहा गया है। जब तक हमें अन्तर में कोई रूप रंग, रेखा या स्वरूप दिखाई देता रहेगा, समझो हम काल की हद में है। जिस वस्तु की हमें तलाश है, वह रंग, रूप, रेखा से परे है। वहां किसी प्रकार की हलचल नहीं है। पूर्णतया शान्ति है। सन्तो ने इसे चौथा लोक कहा है।

''नाम रहे चौथे लोक माहि, दुनिया ढूंढे त्रिलोकी माहि''

विभिन्न धर्म सम्प्रदाय

भारतवर्ष में विभिन्न धर्म सम्प्रदाय हैं और मेरा मेल–जोल लगभग सभी सम्प्रदायों के साधु सज्जनों से है। बहुत वर्ष पहले मैं उज्जैन कुम्भ के साधु सन्तों के मेले में गया था जहां भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के साधु सज्जन इक्ट्ठे हुए थे। भारत में लगभग सभी

सम्प्रदायों के साधु सज्जनों के दर्शन इस कुम्भ के अवसर पर होते हैं। इन सम्प्रदायों के साधकों की योग विधि, शरीर की भिन्न वेश–भूषा और इनकी जीवन शैली देखने योग्य है। मैंने इन साधु–सन्तों को देखकर यह अनुभव किया कि यह विभिन्नता परमात्मा की शान या सुन्दरता है। परमात्मा एक है और उस एक में वह विभिन्न दृष्टि दिखाता है और इस भिन्नता में एकता की दृष्टि दिखाता है और इस भिन्नता में एकता की दृष्टि किसी–किसी को देता है। यह एक परमात्मा का खेल है। जैसे कहा है –

सन्तो एक आप सब माहि।
दूजा कर्म भ्रम है भाई।
ज्यों दर्पण की छाहि।।

मैं आपको मेरी समझ या अनुभव बताता हूं कि मैंने वहां क्या देखा या क्या समझा?

जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।
हर शै में जलवा तेरा हूबहू है।।

यानी सभी साधु–सन्तों में बैठा हुआ वह परमात्मा ही मुझे भिन्न–भिन्न वेष बना कर खेलता हुआ नजर आया और साक्षी भाव से मैनें उस लीला का बहुत आनन्द लिया।

भाव यह है कि यह मनुष्य की सुरत यहां अपने निज धाम से खेल खेलने आई है। जैसे जिसके संस्कार या कर्म है वह सुरत उसके अनुसार मनुष्य रूप धारण करके यहां खेलती है। जो भी आप यहां देख रहे हैं सब खेल अपने–अपने अच्छे या घटिया संस्कारों का है। परन्तु मैं अब धर्म–कर्म की बात ही कर रहा हूं। अतः उन साधु सन्त सज्जनों की ही चर्चा करूंगा जो वेश बनाकर खेल रहे हैं। इस

विषय में मैं अपनी समझ और अनुभव से ही कहूंगा। कोई दावा नहीं है कि जो मैंने अनुभव किया है, यही सत्य है। हो सकता है सच्चाई कुछ और हो जो मैं अनुभव नहीं कर सका। यदि किसी भाई ने कोई और सच्चाई अनुभव की हो तो मेरा मार्ग दर्शन करें।

भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय क्यों बने? जिस महात्मा ने अपना अंहकार खो दिया उसका कोई पंथ नहीं है न ही उसका कोई सम्प्रदाय है। अगर उसका कोई पंथ है तो वह है मानवता। उस परम तत्व तक पहुंचने के बाद उस महात्मा की समझ में आ जाता है कि सब मनुष्य एक है। सब जीवों में वह स्वयं अशं रूप में बैठा हुआ है और सब जीव अपना–अपना खेल खेल रहे हैं और जो महात्मा बीच में ही रह जाते हैं वे उस असली मंजिल तक नहीं पहुंच पाते। उनमें ध्यान साधना के बल पर श्रिृद्वियां, सिद्धियां आ जाती है और उनके अहंकार को बल मिल जाता है। कुछ इजाफा (बढ़ावा), उस महात्मा के शिष्य, जिनके साथ कुछ चमत्कार हो जाते हैं, वे कर देते हैं। बस इसी अहंकार वश महात्मा जी पंथ से विचलित हो जाते हैं व सच्चाई छुपा कर प्रवचन करते हैं यानी खुद भी डूब जाते हैं और शिष्यों को भी ले बैठते हैं।

''अधबीच में डूबसी पत्थर चढ़सी नाव''

ये महात्मा अपनी अलग पहचान स्थापित करने के लिए पंथ को नया नाम देकर आश्रम बना लेते हैं और उस आश्रम से बंध कर रह जाते हैं। यह ठीक है कि आश्रम के बगैर काम नहीं चल सकता व सत्संग देने के लिए एक केन्द्र का होना जरूरी है जहां पर जीवों को महात्मा के दर्शन होना व सत्संग सुनना सुलभ हो जाता है, लेकिन जो महात्मा स्वयं अहंकार में डूबा हुआ है, वह सत्संगियों के अहंकार को कैसे दूर कर सकता है?

मेरी समझ में तो यह आया है कि ये जितने भी मजहब बने, सम्पद्राय बने, पंथ बने, वो केवल महात्माओं के अहम की वजह से बने है यानी उनके अहंकार की उपज है।

जब तक कोई महात्मा परम तत्व को स्वयं अपने साधन अभ्यास से पूर्ण काम योगी पुरूष के संग व सत्संग से अनुभव नहीं कर लेता एक मंच पर आने का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि उस महात्मा को तो दिल्ली से आगे और गांव नजर ही नहीं आता अर्थात् वह अपने से बड़ा ज्ञानी ध्यानी किसी को नहीं समझता। वह समझ भी कैसे सकता है? जब उस पर चारों और से नोटों की वर्षा होती है, सत्संगियों की लम्बी–लम्बी कतारें हाथ बांधे खड़ी रहती है व भगत जन दर्शन की एक झलक पाने के लिए दीनहीन की मुद्रा में खड़े रहते हैं। तभी तो वह मान बड़ाई में फंस जाते हैं व अहंकारी बन जाते हैं।

संस्कारों का प्रभाव

सनातन धर्म में 16 संस्कार दिए जाते है। मनुष्य के मां के गर्भ में आने से लेकर मरने के 12 दिन तक यह संस्कार दिए जाते हैं। हमारा यह जीवन संस्कारों का ही है। जिस प्रकार के संस्कार इस मन पर पड़ते हैं, वहीं विकसित होते हैं। संस्कारों का एक उदाहरण आपकी सेवा में लिखता हूं। यह 1962 की घटना है। मेरी पलटन कोटा में थी। मेरी कम्पनी का एक सिपाही छुट्टी पर घर गया हुआ था। वहां उनका एक आमों का बाग था जहां उसके पिता ने कुछ साधुओं को ठहराया हुआ था। जब वह सैनिक उस बाग में गया तब वे साधु भांग घोट रहे थे। उस सैनिक ने गुस्सा करके उनके भांग घोटने के कुण्डी–सोटा तोड़ दिए तब उन साधुओं ने गुस्से में कहा भगवान आपको अन्धा कर दे। उस सैनिक ने उस समय तो उनकी

बात की परवाह नहीं की परन्तु वह हिन्दू था और हिन्दू धर्म में साधु की दुराशिष की बहुत सी कहानियां उसने सुन रखी थी और उस दुराशिष का संस्कार उसके मन में रह गया। जब वह सैनिक छुट्टी पूरी करके वापिस पलटन में आया तब दो–चार दिन के बाद उस अन्धा होने के संस्कार वश उसको दिखना बन्द हो गया। वह दिखाने के लिए हास्पिटल गया तो आंखों के डाक्टर ने उसे फिट कर दिया यानी उसकी आंखों को बिल्कुल सही बताया। सैनिक ने तब हास्पिटल के बड़े अधिकारी डाक्टर के पास जाकर अपनी पूरी घटना बताई और फिर रोने लगा। डाक्टर मेजर कपूर व्यास का सत्संगी था। उसने सैनिक को डिसचार्ज तो कर दिया परन्तु उसके मन में उसके लिए हमदर्दी थी। रविवार का दिन था और मैं एक सैनिक–गुरूद्वारे में सत्संग में बोल रहा था। बाद में उस डाक्टर ने मुझे उस सैनिक की हालत बता कर कहा कि उसकी कुछ मदद कर देना।

मैंने पलटन में आकर उस सैनिक को बुलाकर उससे सारी घटना पूछी और उस घटना को समझ कर मैंने उसे अपने गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी महाराज का फोटो देकर कहा कि यह फोटो वाला महात्मा सब साधुओं का गुरू है। तुम इसका ध्यान करके प्रार्थना करो कि ''हे महाराज। मैंने साधुओं का अपमान करके बहुत बड़ी भूल की है। मुझे क्षमा कर दो। मैं फिर दोबारा ऐसा नहीं करूंगा।'' इस प्रार्थना से वह आपको माफ कर देंगे और आपकी तकलीफ दूर हो जायेगी। ऐसा संस्कार देकर मैंने अधिकारी को कुछ कह सुनकर उसे दस दिन की छुट्टी दिलवा दी। जब वह सैनिक छुट्टी से वापिस आया तब उसकी आंख बिल्कुल ठीक थी।

जब मैं होशियारपुर अपने गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी के दर्शन करने गया तब मैंने उन्हें यह सारी बात बताई। बात सुनकर उन्होंने मुझसे पूछा – सच बताओ। आपने कुछ किया? मैंने कहा –

महाराज जी। यह आपकी ही कृपा थी जो उसको फिर से दिखने लग गया। उन्होंने अपने दोनों कानों को हाथ लगा कर कहा कि – मैंने भी कुछ नहीं किया। तुम रहस्य समझ गए हो। उस सैनिक ने दुराशिष का जो नकारात्मक संस्कार लिया हुआ था, आपने उसको सकारात्मक के बढिया संस्कार देकर उसकी मदद कर दी और वह ठीक हो गया। इस बात से आप संस्कारों की बात समझ गए होंगे। मनुष्य का जीवन ही उसके संस्कारों का है। गुरू अपने सत्संग में मनुष्य को संकल्प शक्ति का रहस्य बता कर 'शिव संकल्प मस्तु' यानी Positive thinking का अच्छा संस्कार दे देता है और घटिया संस्कारों को छोडकर बढिया संस्कार अपनाने की बात मनुष्य को अपने सत्संग में समझा देता है। रोज–रोज के सत्संग से बात समझ में आ जाती है, मन पवित्र होता जाता है और यह जीवन सुखात्मक बन जाता है। मैंने गुरू कृपा से अपना जीवन सहज ही हंसते–खेलते जिया है और अपनी पुस्तकों में भी इस सुखात्मक जीवन शैली के बारे में ही बताया है।

धार्मिक गुरू या आचार्य सज्जनों के शारीरिक वेशभूषा तथा भिन्न–भिन्न साधन की विधियों का अर्थ यह है कि जिस सज्जन ने देखकर, सुनकर पढकर तथा संगत से जैसे–जैसे संस्कार ग्रहण किए, वह उसके कर्म या संस्कार बन गए और उचित समय आने पर उन संस्कारों के अनुसार कर्म करने को वह मजबूर है। जब वह उस कर्म या संस्कार को भोग लेता है तब छुटकारा होता है। कहने का भाव यह है कि यहां साधु–सन्त ही नहीं, हर मनुष्य अपने मन पर पड़े हुए संस्कार भोगने को मजबूर है। इसी को कर्म गति कहा है। जैसे चोर चोरी करने को मजबूर है, झूठा झूठ बोलने को, जार जारी करने को, ठग ठगी करने को, धर्मात्मा धर्म करने को तथा दयालु दया करने को मजबूर है। यानी मनुष्य जो भी काम करता है, वह उसकी

मजबूरी है। एक फिल्मी गाने में कहा है ''यारों मुझको माफ कर दो, मैं नशे में हूं।'' मनुष्य कितना भी अक्लमन्द या बुद्धिमान् हो, जब अशुभ कर्म उसके सामने आ जाते हैं तब वह घटिया कर्म कर बैठता है। उदाहरणार्थ, गुहाटी के हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस के पद पर आसीन एक व्यक्ति अति बुद्धिमान् और न्याय के प्रधान होते हुए भी अपने अशुभ कर्मो के आने पर सब ज्ञान ध्यान व न्याय भूल गए और उन्होंने मामूली गलती पर अपनी पत्नी व पुत्रियों का गला काटकर उन्हें अपने मकान के लान में गाड़ दिया। इस घटना को सब वकील व जज जानते हैं। इस घटना का कारण वही संस्कारों की मजबूरी, नकारात्मक विचारों का प्रभाव या अशुभ कर्मो का फल ही है जिसके कारण वह ऐसा अति घटिया कर्म कर बैठे और उन्हें अन्त में मौत की सजा मिली।

जब मनुष्य के जन्म–जन्मान्तरों के शुभ कर्म आ जाते है तब किसी पूर्ण विवेकी महापुरूष की संगत मिलती है और उसके दर्शन व सत्संग से इस कर्म रहस्य व संस्कारों की समझ उसे आ जाती है और वह आगे के लिए सावधान हो जाता है।

विचार–शक्ति

यह लोक जिसमें हम जी रहे है, स्थूल लोक कहलाता है। यहां सब संकल्प तथा विचारों का खेल है। जैसे किसी के विचार व संकल्प होते हैं, वैसा ही उसका जीवन बन जाता है। अच्छे विचारों से अच्छा, बुरे विचारों से बुरा तथा प्रेम से प्रेम का जीवन बन जाता है। अतः विचार से इच्छा बनती है और इच्छा से संकल्प बनता है। अगर किसी की दृढ़ इच्छा या संकल्प हो तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है। दूसरा, जिस प्रकार का व्यवहार हम दूसरे के साथ करेगें, वही व्यवहार हमें बदले में मिलेगा, यह कुदरत का नियम

है। इसलिए जैसा जीवन मनुष्य चाहता है वैसा ही अपना जीवन वह बना सकता है। इसलिए सन्तो ने मनुष्य को अपनी जीवन शैली प्रेममय बनाने के लिए 'शिव संकल्पमस्तु' का मूल मन्त दिया है और जोर देकर कहा है कि प्रेम करो ताकि जीवन प्रेममय बन जाए। प्रेम करना, नफरत करना, ईर्ष्या–द्वेष करना भलाई–बुराई करना या परोपकार करना सब कुछ मनुष्य के अपने हाथ में है। इसलिए आप जैसा बनना चाहते हो या अपना जीवन बनाना चाहते हो वैसे ही विचार अपने मन में रखो। जो नकारात्मक विचार रखता है उसका जीवन निम्न स्तर का होता है और जो सकारात्मक विचार रखता है उसका जीवन उत्तम स्तर का होता है। जैसे कहा है –

"As you sow, so shall you reap"

यानी किसान खेत में जो भी बीज बोता है, वही फसल काटता है। ऐसे ही मनुष्य का मन कुछ न कुछ विचार करता रहता है। यदि वह अच्छे विचार रखता है तो उसका फल अच्छा होगा और घटिया विचार रखेगा तो उसका फल घटिया होगा। मनुष्य घटिया व नकारात्मक सोच अधिक रखता है, उसका फल, उसको दुख, तकलीफ, घाटा, बीमारी, दुर्घटना और तरह–तरह की मुसीबतों के रूप में मिलता है।

हम गृहस्थी हैं। घर में पति–पत्नी, माता–पिता, सास–बहुत, नौकर आदि सब रहते है। इनकी प्रकृति व स्वभाव भिन्न–भिन्न होते हैं। जब ये लोग खुश होते हैं तब तो एक दूसरे का भला सोचते हैं और जब वे किसी बात पर नाराज हो जाते हैं तब चाहें वे पति–पत्नी हों या कोई और सदस्य हों, बुरा सोचते हैं और उस बुरे विचार का फल कुछ समय के बाद Radio-waves के हिसाब से आकाश से वापिस आता है तो घर–परिवार में दुख, तकलीफ, घाटा, बीमारी, दुर्घटना आदि मुसीबत लाता है। जिसे तुलसीदास ने इस प्रकार कहा है –

जहां सुमति तहां सम्पत्ति नाना।
जहां कुमति तहां विपत्ति नादाना।

इस प्रकार जो हमारे विचार, भाव या संकल्प हैं, वहीं हमारे कर्म है। हम जो अच्छे या बुरे संस्कार ग्रहण करते हैं, उनसे शुभ व अशुभ कर्म बनते रहते है। बात स्पष्ट है कि जो घटिया संस्कार हम ग्रहण करते हैं जिनसे निराशा, भय व कायरता के भाव उठते हैं तो वह हमारे बुरे कर्म हैं और जो अच्छे संस्कार हम ग्रहण करते हैं उनसे ईश्वर के प्रति विश्वास, आत्मविश्वास, निर्भयता व खुशी के भाव उत्पन्न होते हैं, वे हमारे शुभ कर्म है। अर्थात् हमारा किया हमें ही भुगतना है। यह है कर्मगति का फल। इस कर्म के फल के बारे में दातादयाल का एक शब्द है :–

कोई सुख–दुख का नहीं दाता, तेरी ही भूल सब।
कर्म अपने करते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल सब।।

कर्म की प्रधानता की, क्या नहीं तुझको समझ।
कर्म से आनन्द है और, कर्म ही से सूल सब।।

यह जगत है वाटिका, करते हैं प्राणी आ के काम।।
कर्म के अनुसार इनके, कांटे हैं और फूल सब।।

जो ठगेगा वह ठगा जायेगा, निस्सन्देह आप।
प्रेमी जन ही पाते हैं, और प्रेम के बहुमूल सब।।

अपनी करनी आप भरनी, पड़ती है संसार में।
अपने घर की आप उठाया, करते ही हैं चूल सब।।

किस भरम में तू पड़ा, औरों की बातें छोड़ दे।
काम में लग अपने कर ले, कर्म निज अनुकूल सब।।

राधास्वामी नाम भज, झगडों से बचकर रह सदा।
जो नहीं समझा तो, पढना लिखना धूल सब।।

इस शब्द में कर्म की प्रधानता पर प्रकाश डाला गया है। इसलिए हम जैसा बनना चाहते है या अपना जीवन बनाना चाहते है वैसे ही विचार अपने मन में रखे जाए। जब इस संकल्प तथा विचारों की हमें समझ आ जायेगी तब हम हमेशा शिवसंकल्प और सुन्दर–सुन्दर विचार रखेंगे जिससे हमारा इस लोक का जीवन सुन्दर खुशी समृद्वि का यानी सुखमय बन जायेगा। हमेशा सुन्दर विचार या संकल्प रखने वाली यह बात हमें पूर्ण अनुभवी महापुरूष ही सिखाएगा। उसके सत्संग से हमें यह समझ आ जायेगी कि संकल्प यानी विचार का फल हमें भोगना ही होगा। यदि इस जन्म में पूरा न भोगा गया तो फिर जन्म लेकर भोगेंगे। इस प्रकार सत्संग में जीव को इस कर्मगति की समझ आ जाती है और फिर वह अपने गुरू से इन कर्मो से मुक्त होने का उपाय पूछता है।

सभी अच्छे या बुरे कर्मों से मुक्त होने का सरल उपाय

जब तक सभी कर्मों का लेखा नहीं चुकाया जाता तब तक जीव को बार–बार जन्म लेना पड़ेगा और यही आवागमन है। इस आवागमन से छुटकारा पाने की सहज विधि वही अनुभवी महापुरूष जीव को बता सकता है जो खुद अपने जन्म–जन्मान्तरों के कर्मो का लेखा चुका कर मुक्त हो। जैसे कहा है –

''बन्धे को बन्धा मिला छूटन किस विधि होय।
कर सत्संग निर्बन्ध का जो पल में ले छुड़ाय।।''

''सतगुरू बन्धन काटने आए री, कोई कटवाना चाहे।''

मैं लगभग अपने सत्सगों में तथा अपनी पुस्तकों में स्थूल व सूक्ष्म लोक के साधक तथा योगियों को उनके संचित, प्रारब्ध व क्रियमान् कर्मो को ज्ञान की अग्नि से जलाकर भस्म करने की सहज विधि बताता रहता हूं परन्तु मेरे जैसे साधारण मनुष्य की बात कौन सुनता है? लोग समझते हैं कि बड़े–बड़े आश्रम वाले महात्मा जिनके लाखें शिष्य हैं, वे मुक्त हैं। प्यारे पाठकों। मैं किसी की बुराई नहीं कर रहा हूं परन्तु सच्चाई यह है कि ये जितने बड़े–बड़े आश्रम हैं जहां शिष्यों की बहुत भीड़ दिखाई देती है, वे महात्मा सज्जन खुद बन्धन में हैं। वे आपके कर्म क्या काटेंगे? खुद कर्म के जाल में फंसे हुए हैं। ये महात्मा लोग दूसरों को शिक्षा देते हैं कि यह संसार नश्वर हैं जबकि खुद मन्दिर, मठ, आश्रम बनाकर बैठते हैं। फिर उनके ऊपर मुकदमे बाजी चलती है। अब प्रश्न यह उठता है कि मैं सत्संग क्यों कराता हूं? किसी संस्कारवंश धर्म या भजन को जानने की जिज्ञासावश कुछ खोजबीन के बाद जब मैं अपने गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी के पास पहुंचा तो पहले ही दिन मुझे उस राम–नाम की अनुभूति हो गई जिसकी शास्त्रों में बहुत चर्चा की गई है। इसके बाद मेरे गुरू जी ने मुझे आज्ञा दी की अपने इस अनुभव को दीन दुखी या जरूरतमंद को बिना किसी मुआवजे के बांटते रहना। इसीलिए मैं यह कार्य कर रहा हूँ।

मैंने धर्म के विषय में यह अनुभव किया है कि धर्म विश्वास का विषय है। जिस महात्मा में आपकी श्रद्धा व विश्वास है तो उस श्रद्धा व विश्वास के अनुसार आपका काम हो जायेगा, सिद्धि उस महात्मा में नहीं अपितु आप में हैं। यह मेरे अपने जीवन का अनुभव है। जो लोग मुझ पर विश्वास रखते हैं, उनके साथ हर रोज नए–नए चमत्कार होते हैं और उनके काम पूरे हो जाते हैं यानी मैं जीवित ही पुज रहा है जबकि सच्चाई यह है कि मुझे इन चमत्कारों का कुछ ज्ञान नहीं होता है। मेरे में कोई सिद्धि–शक्ति नहीं है। तो फिर यह रहस्य

क्या है? रहस्य यह है कि हर मनुष्य के मन में परमात्मा तत्व अंश रूप में विद्यमान है। जिसको जो कुछ मिलता है वह उसके आस–विश्वास, श्रद्धा व भाव का ही फल मिलता है और मनुष्य समझता है कि देवी, देवता, गुरू, पीर, पैगम्बर मुझको देता है। अब देवी, देवता, राम, कृष्ण आदि तो यह सच्चाई आकर बता नहीं सकते क्योंकि वे तो सूक्ष्म लोक के जीव है। मैं जीवित इस रहस्य को खोल रहा हूं क्योंकि मेरे साथ रोज ये घटनाएं घटती हैं। मेरा रूप प्रकट होकर लोगों के भिन्न–भिन्न काम कर देता है और मुझे इस बात का पता नहीं होता तो मैं कैसे मान लूं कि कोई देवी–देवता चलकर आता है। यह तो इन्सान के मन में ही यह शक्ति है कि वह अपने विश्वास के अनुसार देवी देवता या गुरू का रूप प्रकट कर लेता है।

किसी भी धर्म–सम्प्रदाय में विश्वास रखने वाले योगी, साधकों को उनके विश्वास का ही फल मिलता हैं। योग–साधना में वे जो भी नजारे देखते हैं, शक्ल–सुरत देखते है, वे वास्तव में होते नहीं है अपितु उनको भासते है। इसी को धर्म–कर्म में काल और माया कहा गया है। यह सब देखी, सुनी व पढ़ी हुई बातें होती है और मनुष्य के मन पर इनका संस्कार पड़ा हुआ होता है। जब बाहर के ग्रह की रोशनी व किरणों का प्रभाव मन पर पड़ता है तो वही संस्कार जाग्रत अवस्था में, स्वपन में व साधन में योगी के सामने आते है। किसी बाहरी पूर्ण अनुभवी गुरू से ही यह भेद मिलेगा कि यह सब वास्तव में सत्य नहीं है, मन पर पड़े संस्कार है जो भासते हैं। तब भेदी गुरू की कृपा से साधक सूक्ष्म लोक में नजारों व अनुभवों को छोड़कर आगे कारण लोक में पहुंचेगा जहां केवल सार शब्द या सत् शब्द का अनुभव है। सुरत से इसका अनुभव होता है। जब तक यह अनुभव नहीं होता, सुरत (तवज्जह) अपने असली आधार को भूली

हुई रहती है तथा मन और देह से सम्बन्ध रखती है तब तक उसका आवागमन समाप्त नहीं होता। अर्थात् जब तक सुरत मन का संग छोड़कर शब्द का संग नहीं करती और आखिर में शब्द में मिल नहीं जाती तब तक आवागमन बना रहता है। लेकिन यह सब वक्त गुरू ज्ञान से ही सम्भव है। जहां तक प्रकाश का मण्डल है, प्रकाश का भी अनुभव किसी को शब्द के साथ और किसी को केवल प्रकाश का ही होता है। यह प्रकाश का अनुभव ब्रह्मचर्य पर आधारित है। जिस साधक का शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य स्थिर है, वही साधक प्रकाश का अनुभव करते हैं जो परम आनन्द का अनुभव होता है। उदाहरण तो उस परम आनन्द का नहीं दिया जा सकता परन्तु जैसे शुरू–शुरू में सैक्स का जो 2 या 2½ मिनट का आनन्द है, उससे कई गुणा ज्यादा ध्यान में योगी अपने अन्दर इस प्रकाश के आनन्द को अनुभव करते हैं। परन्तु यहां इस प्रकाश के मण्डल को भी छोड़कर शब्द में लीन होने की बात है। मैं अभी तक शब्द के अनुभव को छोड़ नहीं सका हूं। परन्तु कई वर्षो से जीवित मुक्ति का आनन्द लेता आ रहा हूं और शरीर छोड़ने के बाद क्या गुजरे? कह नहीं सकता।

यह भवसागर मन के संकल्प–विकल्प ही हैं जो उठते रहते हैं। जब तक यह सुरत अपने मन के विचारों को छोड़कर शब्द ब्रह्म में नहीं जायेगी तब तक यह कर्म का सिलसिला यानी आवागमन चलता रहेगा। यदि मनुष्य गुरू कृपा से इस कर्म रहस्य को समझ ले तो वह सारे काम करता हुआ इस कर्म के बन्धन से निकल सकता है। इसलिए गुरू से ज्ञान लेकर सुन्दर जीवन बिताते हुए इस कर्म के चक्र से बचने का एकमात्र उपाय सुरत शब्द योग सीखो, क्योंकि यही सबसे उत्तम ज्ञान है। इसके लिए पहले आप अपने कर्त्तव्य को समझें और उसका पालन करें। इसके लिए आप मेरी लिखी पुस्तक

''कर्त्तव्य और धर्म'' पढ लेना। वैसे यह जीवित मुक्ति वाला या सब कर्मो को ज्ञान की अग्नि में जलाकर भस्म करने वाला ज्ञान पुस्तकों को पढने से नहीं मिलता है। यह तो किसी जीवित पूर्ण अनुभवी महापुरूष की संगत व ज्ञान से ही जाना जा सकता है। इसके लिए एक छोटा सूत्र यह है कि आप परमात्मा को किसी साकार या निराकार रूप में मानकर सच्चे मन से रोकर प्रार्थना करें कि हे परमात्मा। आप मुझे साकार रूप में आकर ज्ञान दें ताकि मैं आपकी शरण में आकर अपना जीवन सफल कर लूं। यह प्राकृतिक नियम है कि जहां मांग होती है वहां पूर्ति हो जाती है। Where there is demand there is supply.

मैंने आपको संकल्प के बारे में पहले ही बताया है कि जैसे जिसके विचार, चाह व इच्छा होती है वैसा ही उसका जीवन बन जाता है। मनुष्य को विचार तथा संकल्प शक्ति का सही ज्ञान नहीं है पूर्ण अनुभवी महापुरूष जीव को यह बात अच्छी तरह से समझा देता है कि उसका यह सांसारिक जीवन उसके विचारों पर आधारित है। यदि वह हमेशा सुन्दर–सुन्दर व ऊंचे विचार रखता है तो उसका जीवन सुन्दर बन जाता है और यदि वह घटिया या नकारात्मक विचार रखता है तो उसका जीवन दुखमय बन जाता है। यह सुख व दुख मनुष्य खुद अपने विचारों से उत्पन्न करता रहता है। इसमें ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। यही एक बात है जो किसी पूर्ण अनुभवी सज्जन से समझनी है। अब पूर्ण अनुभवी महापुरूष की पहचान यह है कि जिसके सत्संग व संग से आपका जीवन सुन्दर बन जाए, जीवन में आप कोई अभाव महसूस न करें और हर समय आप प्रसन्नता व आनन्द का जीवन जियें तो आप समझ लें कि आपको किसी पूर्ण विवेकी व ज्ञानी पुरूष की संगत मिल गई है। सतगुरू की इससे बड़ी और क्या पहचान हो सकती है? प्यारे सज्जनों! मुझे ऐसे

सतगुरू मिले थे जिससे मेरा जीवन ही बदल गया और मुझे वह सदा रहने वाली शान्ति प्राप्त हो गई।

महापुरूष जो डेरा, धाम, आश्रम बनाकर बैठे हैं, सभी धन्य है जो मानवता को जीने का सहारा दे रहे हैं परन्तु मैं उनके शिष्यों को कुछ प्रसन्न या सन्तुष्ट नहीं देख पा रहा हूं। भीड़ बहुत ज्यादा हैं। जिन महापुरूषों को आप टी०वी० पर प्रवचन करते देखते हो, मैं उनके दर्शन करने तथा बातचीत करने जाता रहता हूं। मेरा कोई आश्रम नहीं है पर सभी आश्रम मेरे है। मैं मुक्त अवस्था का मनुष्य हूं। मेरे गुरू महाराज ने मानव धर्म का मिशन रखा है यानी दुनिया के सब मनुष्य एक ही परमात्मा की मानव सन्तान है। हमारे मिशन के सभी आचार्य मानवता धर्म के प्रचारक हैं। मैं एक बार एक महापुरूष के आश्रम में उनसे मिलने गया था। वह महापुरूष मन, वचन व कर्म से अति पवित्र थे। काफी सत्संगी उनके पास बैठे थे। मेरे से बात करते–करते वह महापुरूष रोने लग गए और कहने लगे कि लालचन्द। तुम तो काम भी कर गए और साफ निकल भी गए परन्तु मैं दलदल में फंस गया। इस बात को वहां बैठे सत्संगी नहीं समझ सके। यह तो हमारे दोनों की बात थी जिसे आम मनुष्य नहीं जानते थे। बात यह थी कि मेरी मुक्त अवस्था देखकर महात्मा जी ने यह कहा कि मैं इन शिष्यों के चक्कर में फंस गया जो अधिकारी नहीं है। आश्रम की मर्यादाओं में बंधा हूं। तुम मुक्त होकर जीवन का आनन्द ले रहे हो।

परन्तु आश्रमों के बिना सत्संग कहां दिया जाए? और जहां आश्रम बन जाते हैं वहां सब जगह एक ही बात नजर आती है।

जैसे कहा हैं –

''घर–घर देखा एक ही लेखा, क्या पण्डित क्या काजी शेखा।।''

गुरू भी क्या करें? अनाधिकारी सज्जन आश्रमों में काल

कर्म के मारे तथा मान, बड़ाई के विचार से दाखिल हो जाते हैं और आते ही आश्रम में वे अपना रंग दिखाना शुरू कर देते हैं और उनको आश्रम से निकालना गुरू की मजबूरी हो जाती है। मैं जानता हूं कि गुरू उनको चाहते नहीं हैं क्योंकि उनका अध्यात्म से कोई मतलब नहीं होता है। उनका कुछ संस्कार ही ऐसा होता है। जैसे कहा है –

''लिखा ललाट टरे नहीं टारा, भावि को कौन मेटन हारा।''

यानी मनुष्य विशेष संस्कार लेकर पैदा होता है और यहां आकर वह यह खेल खेलने को मजबूर होता है। जब यह सुरत खेल खेलते–खेलते थक जाती है तब यह अपने निज घर जाना चाहती है। और फिर गुरू कृपा से उसे यह भेद समझ में आ जाता है और सुरत अपने निज तत्व शब्द ब्रह्म में मिल जाती है और उसका आवागमन समाप्त हो जाता है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण लोक

वैसे तो महापुरूषों ने अपने–अपने अनुभव के अनुसार कई लोक कायम किए हैं। जैसे सनातन धर्म में कहा है –

भूः भवः स्वः जन तप महः स्तमः
तल अतल वितल तलातल महातल रसातल पातालः।

यह महापुरूषों ने अपनी–अपनी योग्यता, मन की एकाग्रता तथा प्रकृति के अनुसार इन लोकों का अनुभव किया होगा। अध्यात्म ज्ञान व तत्व ज्ञान के योग में सन्तों ने अपने–अपने अनुभव के अनुसार तीन ही लोकों की चर्चा की है। इस विषय में मैंने यह अनुभव किया है कि जब हम जागते हुए जो देखते है, सुनते हैं, छूते हैं, यह हमारा स्थूल लोक का अनुभव है। शारीरिक सुख जाग्रत अवस्था में ही प्राप्त होता है। इस अवस्था में शरीर की इन्द्रिया गतिशील होकर

सुरत की धार से सुख भोगती हैं। इन्द्रियां सुख नहीं हैं, केवल सुख भोगने के यंत्र हैं। यदि इन इन्द्रियों में यह धार न आए तो यह शरीर का सुख नहीं मिलता। जैसे नींद में, बेहोशी में या बीमारी में ध्यान के हट जाने से वह धार रूक जाती है और मृत्यु के समय तो वह धार शरीर से ही निकल जाती है और शरीर निर्जीव या बेकार हो जाता है। तो यह सब इन्द्रियों का सुख स्थूल लोक का है।

मन में विचारों का उठना, स्वपन आना तथा योग साधना में मन की एकाग्रता से भिन्न–भिन्न रूप, रंग तथा नजारों का देखना – यह सब सूक्ष्म लोक है जो भासता है परन्तु वास्तव में है नहीं। इस अवस्था में इन्द्रियां तो गीतहीन हो जाती हैं परन्तु मन काम करता है। आदमी अपने ही मन के विचारों से सुखी–दुखी होता रहता है। इसलिए हमेशा सुन्दर व आशावादी विचार ही रखें जाएं, जैसे :–

अपने उरझे उरझिया, उरझा सब संसार।
अपने सुरझे सुरझिया, यह गुरू ज्ञान विचार।।

कारण लोक में कोई हलचल नहीं है एक मनुष्य की सुरत है। एक परम तत्व है जिसको सत, अलख, अगम व अनामी कहा है। इसे ही सुषप्ति अवस्था या गहरी नीद कहा है। यहां मन व शरीर गतिहीन हो जाते हैं। केवल चेतन शक्ति रहती है। यह केवल अनुभव का विषय है। यह अवस्था ही वास्तव में सुख की अवस्था है और यह ऐसा सुख है जिसकी कोई मिसाल नहीं है और यह सुख का स्वरूप आप ही है क्योंकि यह जाग्रत, स्वपन व सषुप्ति तीनों तुम्हारें ही कारण से हैं और तुम्हारे ही आधीन हैं। अर्थात ये सब तुम्हारें ही निज स्वरूप से हैं। शरीर का संबंध सत्ता ब्रह्मै पनाऋ से है। मन का संबंध ज्ञान और विज्ञान से है। और सुषुप्ति या आत्मिक अवस्था का संबंध अनुभव से है। जैसे –

जिस्म है यह बुलबुला स्थूल प्रकृति से पैदा हुआ।
मन है यह बुलबुला सूक्ष्म प्रकृति से पैदा हुआ।।

आत्मा है एक बुलबुला कारण प्रकृति से पैदा हुआ।
इसलिए इन्सान है इक बुलबुला जो तमव्वुज से है पैदा हुआ।

(पं० फकीर चन्द जी)

प्रत्येक प्रकार के बुलबुले में एक प्रकार का फैलाव होता है और वह अपनी प्रकृति के अुनसार खेल करता है और फिर अपनी ही प्रकृति में वापिस चला जाता है। शरीर के तत्व अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश में परिवर्तित हो जाते हैं। आत्मा के अणु कारण प्रकृति में मिल जाते हैं। फिर शेष क्या रह जाता है? परमतत्व सर्वाधार जो मालिके कुल है।

जिस्म बनता है और टूटता, संकल्प उठता है और टूटता।
रूह बनती है और खत्म होती है, जो रहे सदा वह है सच्चा खुदा।।

प्राकृतिक रूप से हम हर रोज इस जाग्रत, स्वपन व सुषुप्ति का अनुभव करते हैं। जब हम जाग्रत अवस्था में होते हैं तब हम स्थूल लोक में होते हैं, जब हम स्वपन में होते हैं तब सूक्ष्म लोक में होते हैं, और जब हम गहरी नींद में होते है तब हम कारण लोक में होते है। परन्तु यह सब तो प्राकृतिक है जो अपने आप होता है। जब हम योग साधना से अपने अन्तर अनुभव करेंगे, वह हमारी इच्छा का खेल होगा। और तभी हमारी मोह–माया छूट कर पूर्ण वैराग से जीवित मुक्ति की अवस्था होगी। इस अवस्था में मनुष्य की सुरत देह, मन व आत्मा में रहती हुई तीनों देह की जाग्रत, स्वपन सुषुप्ति का खेल करती है मगर उसमें फंसती नहीं है। इस अवस्था का नाम है मुक्त अवस्था। ऐसे पुरूष पर इस संसार के सुख–दुख प्रभाव

नहीं डालते। वास्तव में यह एक ऐसी अवस्था है जो अनुभव की जा सकती है परन्तु कहने–लिखने में नहीं आती है। जैसे राधास्वामी वाणी में लिखा है –

पिला दे भक्ति का ऐसा प्याला, ममत्व मैं अपने मन का खो दूं।
न बुद्धि रहे न सुधि रहे कुछ, अहंपना सारा मन का खो दूं।।

जपूं तपूं न भजूं न सुमिरू, न योग युक्ति के पथ पर दौडूं।
न नाम की माला हो हाथ में, हिये की माला का मनका खो दूं।।

वह राग क्या जिसमें राग आए, वह त्याग क्या जो त्याग में फंसाए।
न बन्ध और मुक्ति का हो खटका, विवेक घर और वन का खो दूं।।

न दुख की दुविधा न सुख की चिन्ता, न चित की दुचिता का भय हो किंचित
न ज्ञान और ध्यान की हो इच्छा, विचार साधन यत्न का खो दूं।।

न द्वन्द निर्द्वन्द्व का हो झगड़ा, न द्वैत अद्वैत का हो बखेडा।
झुका के सिर राधास्वामी पद में, विचार तक दासापन का खो दूं।।

यह पद कारण लोक के अनुभव की ओर रहस्य में संकेत करता है। इसी तरह कबीर साहब के बहुत से शब्द है जो इस कारण लोक के अनुभव को रहस्य में बताते हैं। प्यारे सज्जनों। आज के मनुष्य के पास इतना समय नहीं है कि वह इन पहेलियों को समझ सके। इसी तरह के रहस्य में कबीर साहब निम्न एक शब्द में परम शान्ति वाली विधि बता रहे हैं –

''कहूं उस देश की बतियां, जहां नहीं होत दिन रतियां।''

नहीं जहां चन्द्र और तारा, नहीं उजियारा अंधियारा।
नहीं वहां पवन और पानी, गए वह देश जिन जानी।।

न योगी योग से पावे, न तपसी देह जल जावे।
सहज में ध्यान से पावे, सुरत का खेल जिन आवे।।

सोहंग नाद नहीं भाई, न बाजे शंख शहनाई।
निःअक्षर जाप वहां जापे, उठत धुन सुन्न से आपे।।

मन्दिर में दीप बहु भारी, नयन बिन भई अंधियारी।
कबीरा देश है न्यारा, लखे कोई नाम का प्यारा।।

शब्द की आखिरी पंक्ति में लिखा है कि कोई नाम का प्यारा ही उस देश का अनुभव कर सकता है। मैंने 1956 में इस नाम को अपने गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी के पास बैठते ही 10–15 मिनट में विकिरण धारा द्वारा अनुभव किया था और तब से इसका सहज अनुभव जीवन की हर हालत में बना रहता है। मुझे पहले ही दिन गुरू जी ने बता दिया था कि यह जो तुम अपने मस्तिष्क के अगले भाग में अनुभव कर रहे हो, यही नाम है और इसीको ही ध्यान से अनुभव करने का नाम भजन है। अब आप स्वयं सोचें कि यह कितना आसान काम है और महात्माओं ने इस नाम और भजन की व्याख्या करने में ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख डाले हैं और आश्चर्य यह है कि इसका ज्ञान व अनुभव हजारों में से किसी एक को होता है। यदि कोई सज्जन केवल नाम की इच्छा लेकर किसी गुरू के पास जाए तो देर लगने वाली कोई बात ही नहीं है। अब यहां गुरू और शिष्य की बात है। राधास्वामी वाणी का शब्द है –

''गुरू चेला व्यवहार जगत में, झूठा बरत रहा।
गुरू तो मान प्रतिष्ठा चाहे, चेला स्वार्थ संग बन्धा।।''

सच्चा मार्ग सुरत शब्द का सो अब गुप्त भया।।
शब्द लम्बा है। इसकी अन्तिम पंक्ति है

सुरत शब्द बिन जो गुरू होहि, ताको छोड़ो पाप कटा।।

बात स्पष्ट है कि सन्त मत में सुरत शब्द योग अन्तिम है। कुल रचना यहां धारों की है। जिस धार के साथ सुरत नीचे उतर कर आई है वह उसी धार को पकड़ कर अपने निज देश को लौट सकती है। यही धार प्रकाश और शब्द की धार है। अतः शब्द की धार को पकड़ कर ऊपर चलना चाहिए। शब्द ही धुरपद में पहुंचाने वाला सच्चा और पूरा गुरू है।

इन लोकों के अनुभव का समय

यह मनुष्य जीवन सबसे उत्तम है। मनुष्य अन्य जीव जन्तुओं की भांति एक जीव ही है परन्तु इसमें श्रेष्ठता यह है कि इसमें विवेक विचार की शक्ति है जो अन्य जीवों में नहीं है। मनुष्य अपने इसी जीवन में अपनी योग्यता के अनुसार पृथ्वी के इस स्थूल लोक का समस्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है। दूसरा, सूक्ष्म लोकों का भी योग साधना की विधि से अनुभव कर सकता है। कारण लोक का भी अनुभव व आत्मा–परमात्मा के विषय में अपने स्वयं का अनुभव भी मनुष्य इसी जीवन में कर सकता है। अपने स्वयं के अनुभव की विधि सुरत शब्द योग है। मनुष्य में चार तत्व मिल कर काम करते हैं शरीर, मन, आत्मा और सुरत। यह सुरत परमात्मा का एक छोटा सा अंश है। मनुष्य जीवन का सब खेल इस सुरत का है। राधास्वामी वाणी के एक शब्द की अन्तिम पंक्ति में कहा है –

''सुरत हुई अतिकर मगनानी पुरूष अनामी जाय समानी''

इसमें अन्तिम मंजिल बताई है कि साधक व योगी की सुरत शब्द योग का अभ्यास करते–करते अति प्रसन्न व मस्त होकर अन्त में शब्द रूपी परमात्मा में लीन हो जाती है। यानी :–

''चिराग गुल और पगड़ी गायब।''

कहने का भाव यह है कि अध्यात्म संबंधी जो भी अनुभव मनुष्य करना चाहे वह इस मनुष्य जीवन में ही कर सकता है। शरीर छोड़ने के बाद आज तक किसी ने आकर यह नहीं कहा है कि वह अब कहां है? और कौन सा सुख–दुख भोग रहा है?

प्यारे सज्जनों। यह मनुष्य शरीर ही परमात्मा के अंश रूप में इस लोक में लीला करने आया है। अपने–अपने कर्मो व संस्कारों के अनुसार हर मनुष्य खेल कर रहा है। यही सुन्दर व शुभ समय है। जो कुछ चाहते हो, हंसते खेलते अनुभव कर लो। मैंने अपना पूरा जीवन गुरू कृपा से इस तत्व ज्ञान का अनुभव करते हुए जीया है और अब जी रहा हूं। अतः इन सब लोक लोकान्तरों के अनुभव करने का समय इस पृथ्वी लोक पर मनुष्य योनि ही है। आप जो कुछ भी चाहते है, इस मनुष्य शरीर में जीवन जीते हुए प्राप्त कर सकते है।

लोक–लोकान्तर व तत्व ज्ञान के आवश्यक आधार

संसार में प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म–सम्प्रदाय का हो, अपनी श्रद्धा व विश्वास के अनुरूप किसी देवी–देवता या राम कृष्ण का सहारा लेकर अपनी मनोकामना पूरी कर सकता है परन्तु भ्रम, शंका व सन्देह का निवारण जीवित पूर्ण अनुभवी गुरू ही कर सकता है। इसलिए इस ज्ञान के लिए पूर्ण अनुभवी गुरू की अत्यन्त आवश्यकता है। वह व्यक्ति के भाव व विचारों को जानकर अपने अनुभव से परिस्थिति व समय के अनुसार उसके सब भ्रम दूर कर सकता है। पुस्तकें मृतक हैं। इनसे यह ज्ञान होने वाला नहीं है। जैसे कोई डाक्टर रोगी के रोग को जांच कर उसे उचित औषधि देकर उसे दूर कर देता है। उसी प्रकार जीवित पूर्ण गुरू ही मनुष्य

को भ्रम से निकाल कर उसे सही ज्ञान दे सकता है। जैसे –

''गुरू की मेहर अगम निगम लखि, बिन गुरू न मुक्त भया।''

अगम कहते हैं अनुभव के द्वारा सतपद के ज्ञान को और निगम कहते हैं अज्ञान को। जब तक अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त न हो, वह सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। बुद्धि से प्राप्त किया गया ज्ञान सीमित ज्ञान है, पूर्ण नहीं। गुरू इस अगम का भेद देकर मनुष्य को परम शान्ति और परम आनन्द के अनुभव तक पहुंचा देता है। जैसे कहा है –

''गुरू ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तज देश भ्रम का।''

बल पाया अब विरह मर्म का भटकन छूटा दैरो हरम का।
वर्षन लागा मेध कर्म का, संशय भागा जन्म मरण का।।

तोड दिया सब जाल निगम का, सुख पाया अब हम शम दम का।
फल पाया हम आज शम दम का, भंवर हुआ मन सेत पदम का।।

फूंक दिया घर लाज शर्म का, काटा फन्दा नियम धर्म का।
ज्ञान ध्यान वाचक हम छोड़ा, भक्ति भाव का पहना जोड़ा।।

भक्ति भाव की महिमा भारी, जानेगा कोई सन्त विचारी।
सतनाम सतपुरूष अपारा, चौथे माहि करे दरबारा ।।

सुरत शब्द मार्ग कोई पावे, सो हंसा चढ लोक–सिधावे।
सो मार्ग अब राधास्वामी गाई, कोई–कोई प्रेम भक्ति से पाई।

तो स्पष्ट है कि गुरू की आवश्यकता इस मार्ग में इसलिए है कि वह जीव की प्रकृति व स्वभाव को समझ कर उसे इस अगम

का भेद देता है जिसको जानकर जीव इसी मनुष्य जीवन में ही परम शान्ति व परम आनन्द का अनुभव कर लेता है।

दूसरी बात जो आवश्यक है वह है मनुष्य के मन में इस ज्ञान की लगन व तड़फ का होना। बिना लगन व तड़फ के कुछ प्राप्त नहीं होता है। जो वस्तु आप चाहते हैं, उसकी प्रबल इच्छा रखो क्योंकि आपके संकल्प, इच्छा व विचार में जबरदस्त शक्ति है। यदि आप सच्चे हृदय से पुकार करो तो इच्छा पूरी होने में देर नहीं लगती है। लेकिन इसके लिए मन में जबरदस्त चाह व तड़फ हो। इसी तड़फ या लगन पर महर्षि शिवव्रतलाल जी की उर्दू फारसी की एक नजम है जिसे सत्संगों में मानवता धर्म के प्यारे आचार्य सूर्यनारायण भट्ट गाया करते हैं। इसे ध्यान से पढ़कर इस पर अमल कीजिए–

दिल में अगर तड़फ न हो, आदमी आदमी नहीं।
खुद से न हो जो बेखबर, खेल है बन्दगी नहीं।।
दिल में .....
जिसका इलाज हो सके, वह दर्द दर्द ही नहीं।
जो सकुन से जी सके, वह जिन्दगी जिन्दगी नहीं।।
दिल में .....
तीर पे तीर तू खाए जा, उससे लौ लगाए जा।
आह न कर लबो को सी, यह इश्क है दिल्लगी नहीं।
दिल में .....
तेरे कर्म से बेमियां कौन सी शै मिलती नहीं।
झोली ही तेरी तंग है, उसके यहां कमी नहीं।।
दिल में .....
सिजदा से तू तो मगर, इनसां में पुखतगी नहीं।
कायले बन्दगी तो हूं काबिले बन्दगी नहीं।।
दिल में .....

ऐसी लगन या मन में तड़फ रखने वाला मनुष्य जब गुरू के दर्शन करता है तो अनुभव होने में कोई देर नहीं लगती है। क्योंकि मेरे खुद के साथ यह घटना घटी हुई है। और अब कुछ ऐसे प्रेमी जो दूसरे गुरूओं के शिष्य हैं, मेरे सम्पर्क में आते ही, विश्वास रखते ही, अनुभवी हो जाते हैं। किसी के अन्दर प्रकाश का अनुभव हो जाता है तो किसी के अन्दर शब्द गूंजता है। यानी उनके संस्कार व अधिकार के अनुसार उन्हें अनुभूति हो जाती है।

''नानक नदरी नदर निहाल।''

प्यारे पाठको। मेरा यह अपना अनुभव है जो मेरे खुद के साथ भी घटित हुआ और दूसरे सत्संगी सज्जनों के साथ भी घटित हो रहा है। बस आवश्यकता है तो पूर्ण अनुभवी गुरू की व साधक की सच्ची लगन व तड़फ की, फिर कुछ देर लगने वाली बात नहीं है। क्योंकि वह नाम कहीं और नहीं है बल्कि हर इन्सान के अन्दर ही है।

सत, अलख, अगम व अनाम का भेद

बाहरी गुरू की सहायता के बिना मनुष्य आत्मज्ञान की अन्तिम मंजिल पर नहीं पहुंच सकता। मनुष्य का मन एक भवसागर है। जिसमें तरह–तरह के संकल्प–विकल्प उठते रहते हैं। जब तक मनुष्य की सुरत इस मन के विचारों को छोड़कर ऊपर शब्द ब्रह्म में नहीं जाती तब तक उसका पार होना असम्भव है। जैसे कोई मनुष्य नदी या तालाब तैर कर पार करता है तो तैरते समय उसका शरीर पानी में डूबा रहता है ओर सिर बाहर रहता है लेकिन जब वह दूसरे किनारे पर पहुंच कर बाहर आ जाता है तो वह पार हो जाता है इसी प्रकार जब तक यह सुरत मन के संकल्प–विकल्प, रंग, रूप, नजारों को छोड़कर शब्द को सुनते–सुनते उसमें लीन नहीं हो जाती तब तक मनुष्य का पार होना असम्भव है।

इस ध्यान–योग में सबसे पहले यह आवश्यक है कि मनुष्य इस संसार में जो भी काम करे वह इतनी तल्लीनता से करे कि वह उसमें खो जाए और उसे अपने शरीर का ध्यान ही न रहे। यह ध्यान योग की प्रथम सीढी है और यही कर्म योग कहलाता है। इस कर्म योग से मन को एकाग्र करना आसान हो जाता है। प्यारे सज्जनों। मुझे इस ध्यान योग में इस तरह की कोई कठिनाई नहीं आई। मेरा तो अपने गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी के पास बैठते ही उनकी रेडियेशन से सहज में काम हो गया।

योग साधना में तरह–तरह के रंग, रूप, नजारे या गुरू, पीर के रूप को देखना भी एक मानसिक आकर्षण है, सच्चाई नहीं। कुछ लोग केवल सहस्रदल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न में ही अटके रहते है। यह सब मानसिक अवस्थाएं हैं। जो केवल इन्हीं में फंसे रहते हैं वह मन के इस माया जाल से तब तक नहीं निकल सकते जब तक बाहरी गुरू उन्हें इसका भेद न दे। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूं कि प्यारे भक्तों व सत्संगियों में समय–समय पर मेरा रूप प्रकट होकर उनकी तरह–तरह की मदद करता है और मुझे इसका कुछ पता नहीं होता कि किसने मेरा ध्यान किया है और मैंने उसकी क्या सहायता की है? तो यह रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि मनुष्य के मन में बहुत बड़ी शक्ति है। जिस किसी देवी, देवता, गुरू, पीर, पैगम्बर में उसका विश्वास होता है उसका मन उसी इष्ट का रूप बनाकर जो चाहे मदद ले लेता है। तुलसीदास ने इसे इस प्रकार कहा है –

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

अब यह रहस्य आज तक प्रकट नहीं हुआ और भक्त

समझते रहे कि बाहर से वह इष्ट जिस पर वह विश्वास रखते हैं, उनकी मदद करता है। अध्यात्म ज्ञान में इस रहस्य को मेरे गुरू पं0 फकीरचन्द जी महाराज ने अपने साहित्य में उदाहरण दे देकर स्पष्ट किया है और वही घटनाएं अब रोज मेरे साथ घट रही हैं जिसे मैं अपने सत्संगों व पुस्तकों में बताता आ रहा हूं कि प्यारे भक्तों व प्रेमियों। सिद्धि आपके विश्वास और मन में है, बाहर से कोई देवी–देवता व गुरू–पीर नहीं आता है। इसे ही काल और माया कहा गया है। योग साधना में ये जितने रंग, रूप, नजारें दिखाई देते है, वह वास्तव में हैं नहीं, केवल प्रतीत होते है। ध्यान में मन की एकाग्रता से ये सब देखी, सुनी पढी बातें जो हमारे संस्कार या कर्म बन गए हैं, वहीं प्रकट होते हैं। यदि मनुष्य शरीर और मन के विचारों से ऊपर उठ जाए तो वह सीधा ''कारण लोक'' में जा सकता है। यही बाहरी सन्त सतगुरू का काम है कि वह लोगों को भ्रम, शंका से बाहर करके उनको यह निश्चय करा दे कि गुरू बाहर नहीं, तुम्हारे अन्दर है। महात्माओं ने इस बात को पर्दे में रखकर लोगों को अपने निजि स्वार्थ, मान, प्रतिष्ठा व आश्रमों के लिए अपने पीछे लगाया हुआ है। वास्तविकता यह है कि मनुष्य स्वयं पूर्ण है। सारे देवी–देवता उसी में निवास करते हैं। बाहरी पूर्ण गुरू के सत्संग से सुन्दर जीवन व्यतीत करने का ढंग व संस्कार मिलता है। रहस्य ज्ञाता गुरू शिष्य की प्रकृति, भाव, विचार व योग्यता को देखकर, उसी के अनुसार उसे ज्ञान देकर धीरे–धीरे उसे अन्दर का भेद दे देता है। जैसे कहा है –

जोग जुगति से भरम न छूटै, जब लग आप न सूझै।
कहे कबीर सोई सतगुरू पूरा, जो कोई समझै बूझै।।

और जहां तक अलख, अगम, अनामी आदि के भेद की

बात है, वह यह है कि जब तक मनुष्य की सुरत प्रकाश को देखते–देखते या शब्द को सुनते–सुनते अशब्द या अनामी गति को प्राप्त नहीं कर लेती तब तक वह अपने निज घर नहीं जा सकती। जैसे कहा है कि:–

शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित देय।
जा शब्दे साहब मिलें, वही शब्द गह लेय।।

सन्तों ने अपने निज धाम तक पहुंचने के लिए इस तत्व ज्ञान के अनुभव में यह सत, अलख, अगम, अनाम आदि कुछ शब्द घड़े हुए हैं। जैसे सतलोक वह तत्व है जिसका कभी नाश नहीं होता। जिस प्रकार यह मनुष्य शरीर चार तत्वों से मिलकर बना है – शरीर, मन, आत्मा और सुरत। मनुष्य के ये सभी तत्व शरीर के नष्ट हो जाने पर अपने–अपने तत्व में मिल जाते हैं केवल सुरत तत्व ही कायम रहता है। इस लोक में जैसे सुरत तत्व सत् है, इसी प्रकार आकाश में सतलोक कायम रहता है, उसका विनाश नहीं होता।

इससे आगे अलख तत्व है जिसे सन्त मत में सार शब्द, राम नाम या निज नाम कहा गया है। यह देखा नहीं जा सकता है, केवल अनुभव किया जा सकता है। जो योगी लोग ऊंची साधना में चले जाते है, उनकी सुरत इस सार शब्द का अनुभव करती रहती है। महापुरूषों ने इसे अलख नाम से प्रकट किया है।

अगम इसी सुरत शब्द योग की ही एक हालत (अवस्था) है जिसमें योगी सफर करता रहता है परन्तु उसका अन्त नहीं आता। जैसे मैं 1956 से इस सार शब्द तत्व में सफर कर रहा हूं परन्तु उसका अभी तक मुझे अन्त नहीं मिला है। इसे ही सन्तों ने अगम लोक कहा है। जैसे :–

''इस पर अगम लोक इक न्यारा।
सन्त सुरत कोई करत निहारा।।''

जब मनुष्य साधन करते–करते देह, मन व आत्मा के बोध को छोड जाता है तो उसका शुद्व स्वरूप रह जाता है।

इसके आगे अनामी लोक की चर्चा है। यहां पर सुरत तत्व शब्द को सुनते–सुनते गुम हो जाती है और उस परमात्मा तत्व में मिल जाती है। यहां अशब्द गति है। जैसे – ''चिराग गुल पगडी गायब।'' सभी महात्मा यहां आकर मौन हो जाते है। कहने का भाव यह है कि मनुष्य अपने स्वरूप (सुरत) को उस शब्द रूप परमात्मा तत्व में मिला देता है। जैसे

शब्द प्रकट तब धरिया नाम।
शब्द गुप्त तब हुआ अनाम।।

सुरत हुई अतिकर मगनानी।
पुरूष अनामी जाय समानी।।

मैं अभी तक उस तत्व में मिला नहीं हूं परन्तु निकट हूं। अगर लीन होने पर कुछ बता सका तो बता दूंगा, नहीं तो उसकी मौज है।

अब सत्संग करवाने वाले आचार्य या महापुरूष अपनी रहनी देखें कि वह इस अवस्था के वासी है या नहीं। यदि ऐसा नहीं है और वे केवल अपनी मान–प्रतिष्ठा के लिए गुरूआई करते हैं तो यह हानिकारक है। ऐसे महापुरूष शिष्यों की रेडियेशन से नीचे गिर जायेंगे और उनका पतन निश्चित है।

योग–विधि

महापुरूषों ने अध्यात्म ज्ञान के अनुभव के लिए बहुत सी योग विधियां लिखी हैं। जैसे पतंजलि योग शास्त्र में भिन्न–भिन्न प्रकृति वाले योग साधकों के लिए लगभग 112 योग सूत्र बताए है। प्रयोग करके अनुभव किया है, उसी को अपने धार्मिक ग्रन्थ में लिखा है। भाव यह है कि यह योग विधि मनुष्य की प्रकृति, संस्कार और विचारों पर निर्भर करती है। मुख्य बात मन की एकाग्रता की है। जिसकी समाधि जिस विधि से लग जाए, उसके लिए बस वही योग विधि सही है। यह बात पूर्ण अनुभवी गुरू पर निर्भर करती है। वह मनुष्य की प्रकृति, योग्यता व परिस्थिति देखकर उसको ऐसी विधि बता देता है जिससे उसका मन सहज ही एकाग्र हो जाए। वह उसके भ्रम व शंका हटा कर अज्ञान के पर्दे को दूर कर उसे अन्दर में दाखिल करवा देता है। जैसे कहा है –

''घर में घर दिखलाय दे, सो सतपुरूष सुजान।''

इसलिए किसी पूर्ण अनुभवी महापुरूष की संगत करनी चाहिए। उसकी रेडियेशन व दर्शन से जल्दी लाभ होता है। जैसे स्वयं आग जलाकर लाभ उठाने की अपेक्षा जलती हुई अग्नि के पास बैठकर उससे लाभ उठाना अधिक आसान है। जैसे कहा है–

जल देखे शुचि उपजे, साधु देखे राम।
माया देखे मोह उपजे, नारी देखे काम।।

ऐसे पूर्ण अनुभवी गुरू के प्रति श्रद्धा व विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि धर्म में सब खेल ही विश्वास का है। इसलिए गुरू आज्ञा से मन को एकाग्र करके, घटिया संस्कारों को छोडकर मन को पवित्र करना है क्योंकि यह ध्यान योग मन की एकाग्रता ही है। यह योग साधना किसी सत्पुरूष की देखरेख में ही

करना चाहिए नहीं तो मन का सन्तुलन बिगड़ने का भय रहता है जैसे :–

''बिन गुरू घट में राह न चलना।
राह में अनेक विध्नन मिलना।।''

गुरू बिन माला फेरते, गुरू बिन लेते नाम।
गुरू बिन नाम हराम है, जाय देखो वेद पुराण।।

अतः बाहरी गुरू से प्रेम व गुरू आज्ञा मुख्य है। वैसे तो महापुरूष देखने में हमारी ही तरह हैं परन्तु वह हमेशा उस परम तत्व से जुड़े रहते हैं और ऐसे पुरूषों की संगत व रेडियेशन से मनुष्य को सुख, शान्ति मिलती है।

इस बात का प्रमाण मेरा स्वयं का अनुभव है क्योंकि मैं जैसे ही इच्छा लेकर अपने गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी के पास बैठा तो उनके संग व रेडियेशन से मुझे उस राम नाम की अनुभूति हो गई जिसकी चर्चा से शास्त्र भरे हुए हैं।

परमात्मा के साकार व निराकार रूप

इस संसार में मनुष्य परमात्मा के साकार व निराकार दोनों रूपों की उपासना करता है। साकार रूप में मनुष्य किसी देवी, देवता, गुरू, पीर, पैगम्बर को परमात्मा का स्वरूप मानकर उससे प्रार्थना व ध्यान करके सिद्धि, शक्ति प्राप्त कर सकता है। परन्तु ज्ञान तो उसे जीवित गुरू से ही हो सकता है। निराकार का मार्ग शुरू में कठिन है, सिद्धि व सफलता इससे भी ली जाती सकती है परन्तु असली परमात्मा इनसे दूर है यह जो मनुष्य मंदिरों में राम व कृष्ण को समझते हैं, यह सब अज्ञानता व मन की भक्ति हैं क्योंकि इन्हें हमने अपने मन से माना हुआ है। असली परमात्मा, मालिक या खुदा

यहां नहीं रहता। जैसे सूर्य यहां नहीं रहता, केवल उसकी किरण यहां रहती हैं। यदि यह सूर्य यहां आ जाए तो यह पृथ्वी आग का ही स्वरूप हो जाए। इसी प्रकार दुनिया के सभी जीवों में उस परमात्मा का अंश यहां विद्यमान है, खुद परमात्मा नहीं।

ये जितने मन्दिर, मस्जिद, तीर्थ स्थान आदि बने हुए हैं जहां जाकर भक्त अपनी श्रद्धा व विश्वास का फल प्राप्त करते है, ये सब ईश्वर की साकार भक्ति के उदाहरण है। कृष्ण भक्त रसखान ने इस साकार भक्ति में अपने भाव इस प्रकार प्रकट किए है :–

या लकुटी अरू काम्बरिया पर राज तिंहपुर को तज डारू।
आठों सिद्धि नौ निद्धियों का सुख, नन्द की गाय चराय बिसारू।।

कोटिक हो कलधोत के धाम, करिल के कुंजन ऊपर वारू।
रसखान कभी इन आखन से, ब्रज के वनवाग तड़ाग निहारू।

रसखान भगवान श्री कृष्ण की लाठी और कम्बल पर तीनों लोकों का राज तथा भगवान की गायें चराकर आठ सिद्धि और नौ निद्धियों का सुख, त्यागने को तत्पर है। साथ ही सोने–चांदी के करोड़ों महल छोड़कर ब्रज के उन जंगलों में जाना पसन्द करते है जहां भगवान कृष्ण गाय चराया करते थे। यहां रसखान की कृष्ण भक्ति चरम सीमा पर है। साकार भक्ति का एक शब्द और देखिए :–

मन वृन्दावन चाल बसो रे।
चाल बसो रे, लोग हंसो चाहे मान घटो रे।।

गुरू बिन ज्ञान गंगा बिन तीर्थ।
एकादशी बिना व्रत किसो रे।। मन .....

बालू की भीत अटारी को चढबो।
ओछे की प्रीत कटारी को मारबो।। मन .....

मन न मिले जिससे मिलबो किसो रे।
प्रीत करे जिससे पड़दों किसो रे मन .....

बिन राजा बिन राज किसो रे।
बिन पुत्रं परिवार किसो रे। मन .....

चन्द्र सखी भज बाल कृष्ण छवि।
नन्द को लाल मेरे हृदय बसो रे। मन .....

साकार रूप में मनुष्य जिसको भी अपना इष्ट मानता है, वह उसका अपना मन ही बनाता है। अतः हर आदमी अपने मन का पुजारी है और जब तक वह अपने मन का पुजारी है वह अपने निज घर नहीं जा सकता है। उदाहरण के रूप में मेरे गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी पहले साकार रूप में विश्वास रखते थे। वह सनातनी थे और उनमें ब्राह्मण के सब संस्कार थे। वह राम और कृष्ण को अपना इष्ट मानते थे और राम और कृष्ण की मूर्तियां उन्हें प्रकट होती थी। एक बार की बात है कि कृष्ण की मूर्ति उनके आगे–आगे चल रही थी और वह पीछे–पीछे चल रहे थे। एक जगह कृष्ण की मूर्ति रूकी और कहा कि यह रास्ते में जो गोबर पड़ा है उसे खा लो। उन्होंने गोबर तो खा लिया लेकिन विचार आया कि रामायण, गीता, भागवत आदि किसी भी ग्रन्थ में भगवान् ने किसी भक्त को यह नहीं कहा कि तुम गोबर खा लो। इसके पश्चात् उनका विश्वास साकार रूप से टूट गया कि यह सच्चे भगवान नहीं हो सकते। फिर उन्होंने भगवान् के निराकार रूप से तीन दिन तक रो–रोकर प्रार्थना की कि हे प्रभु आप हमेशा अवतार लेकर आते हैं और अपने भक्तों का कल्याण करते हैं। जैसे कहा है :–

नाना भांति राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा।।

अतः आप कृपा करके मेरे लिए अवतार लेकर आएं और मेरा कल्याण करें। इस प्रार्थना से जब उनका मन एकाग्र हो गया तो एक दिन सुबह चार बजे एक प्रकाश का गोला उनके सामने आया और उनके अन्दर उनके गुरू महर्षि शिवव्रतलाल जी का रूप प्रकट हुआ और उन्होंने कहा कि तुम्हारे लिए मैं अवतार लेकर आया हूं। मैं लाहौर रहता हूं और मेरा यह पता है। आप आ जाना। मैं आपका कल्याण करूंगा। इसके पश्चात् पं0 फकीरचन्द जी महाराज ने लाहौर जाकर महर्षि शिवव्रतलाल जी से राधास्वामी नाम की दीक्षा ली और पूरी जिन्दगी योग साधना करके तत्व ज्ञान का अनुभव किया।

कहने का भाव यह है कि पहले वह साकार रूप में राम–कृष्ण को मानने थे और उनके विश्वास से उनके दुनिया के काम होते थे। अब रही बात गोबर खाने वाली तो ध्यान करने से जो कृष्ण का रूप बनता था, वह उनका मन ही बनाता था। मन उनका पवित्र नहीं था इसलिए जो रूप बना उसने उन्हें गोबर खाने को कहा। जब उनका उस रूप से विश्वास टूटा और उन्होंने सच्चे दिल से निराकार स्वरूप से प्रार्थना की तो उन्हीं के उस मन ने दातादयाल (महर्षि शिवव्रतलाल) के रूप को प्रकट किया जिनसे उनका कल्याण होना था। और फिर दाता दयाल ने उन्हें आगे का योग साधन का रास्ता बताया जिनसे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई। तो रहस्य यही है कि यह इन्सान का अपना ही मन, ख्याल या विचार है जो रूप प्रकट कर लेता है। जैसे मेरा रूप भक्तों में जगह–जगह प्रकट होकर उनके काम कर जाता है और मैं वहां होता नहीं हूं और न ही मुझे इस बात का पता है कि किसके अन्दर मेरा रूप प्रकट हुआ है तो इससे यह सिद्ध होता है कि यह सब इन्सान के अपने मानसिक भाव और विचारों का फल हैं। परमात्मा मन्दिर, मस्जिद, तीर्थों में नहीं है। वह

तो सुरत रूप में हर घट में समाया हुआ है। राधास्वामी वाणी में कहा है –

भान रूप मालिक सुन भाई।
हर हिरदे में रहा समाई।।

खुदा के पास होने का यकीं मुश्किल से आता है।
वगरना जब खुदा ही पास है तो बेकसी कैसी।।

(महर्षि शिव)

इसी पर महर्षि शिवव्रतलाल जी की एक नजम –

उसकी हो जुस्तजूं[1] क्या, जो अपने रूबरू[2] है।
यह जुस्तजूं[3] नहीं है, तौहीने जुस्तजूं है।।

अन्धे बने हैं आबिद[4], आखें नहीं हैं खुलती।
क्या ढूंढते हैं उसको, जो अपने दूबदू[5] है।।

दाये हैं अपने बायें,, इस जा है और उस जा।
आखें खुली तो देखा, वह अपने चार सू[6] है।।

क्या किलो[7] ख्याल में है, क्या फरजी[8] हाल में है।
जो है जबा पे बैठा, क्या उसकी गुफ्तगूं[9] है।।

दिलदार[10] और दिलवर[11], दिलकश[12] है दिलरूबा[13] है।
खुरशिद[14] ऊं अगर है, वह मेरा माहऊ[15] है।

वह दिल में खुद है कायम, दिल घर है जिसका दायम[16]।
दिल को सम्भल कर देखा, वह दिल में मूलमूं[17] है।

राधास्वामी की मेहर[18] से कर शुगल[19] जिक्र सुलता।
पहुंचेगा अपनी मसकिन[20], जहां तेरी जुस्तजूं है।।

नोट : (1) तलाश (2) आमने–सामने (3) बेइज्जती (4) पुजारी (5) सामने (6) चारों तरफ (7) क्या बाल की खाल निकालने में है

(8) बनावटी (9) बातचीत (10) प्रेमी (11) प्रेमिका (12) प्रेमी (13) प्रेमिका (14) सूरज (15) चांद (16) ठहरा हुआ (17) मौजूद (18) दया से (19) सुरत शब्द–योग का साधन (20) मंजिल पर

इस नजम में ज्ञान मार्ग है जिसमें परमात्मा को अपने अन्दर और सब जगह हाजिर बताया है। वह किसी मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे में नहीं है। इसलिए मानव जाति की सेवा करना ही ईश्वर भक्ति है। मैं स्वयं मानवता धर्म का विश्वासी हूं। यह आजकल जितने भी धार्मिक सम्प्रदाय फैले हुए हैं, मैं इन सबको काल और माया के चक्र में देख रहा हूं क्योंकि इनके गुरू, आचार्य, उपदेशक स्वयं अनुभवी नहीं है केवल पुरानी कथा–कीर्तन की लकीर पीट रहे हैं। अब बुद्धि और विज्ञान के समय में आज का मनुष्य इनसे सन्तुष्ट नहीं है। जिस प्रकार आज के वैज्ञानिक नई–नई खोज कर रहे हैं उसी प्रकार जब तक हम महात्मा लोग योग–साधन की नवीन विधि सीखकर अध्यात्म ज्ञान की नई खोज करके उसे लोगों को नहीं बतायेगें तब तक लोगों पर इसका कोई प्रभाव नहीं होगा और ये धार्मिक मजहब यूं ही आपस में लड़ते रहेंगे। जब आप स्वयं नई खोज व अनुभव करेंगे तो आपके अन्दर से उठने वाली प्रेम की खूशबू की लहरें दूर–दूर तक जायेंगी जिसे लोग महसूस करेंगे और फिर वे आपके दर्शन करने व आपके वचन सुनने आयेंगे तो उनके जीवन में भी सफलता व सुन्दरता आयेगी और आप सज्जनों का जीवन भी सफल होगा।

तन्त्र व मन्त्र द्वारा अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति

भारत में अध्यात्म ज्ञान की खोज मन्त्र और तन्त्र दोनों विधियों से की गई है। मन्त्र का अर्थ किसी अनुभवी महापुरूष से योग विधि सीखकर अनुभव करना है। इन विधियों के शास्त्र भरे हुए

है। जैसे गीता, रामायण व अन्य सभी सम्प्रदायों के ग्रन्थ जिनमें महापुरूषों ने अपनी–अपनी प्रकृति के अनुसार ज्ञान प्राप्त करके वह सूत्र तथा ढंग लिखे हुए है। यह मन्त्र का ज्ञान गुरू मत कहलाता है।

तन्त्र का ज्ञान मन मत है। तन्त्र का अर्थ तन है और इस तन में ही मन, आत्मा व सुरत रहते है। यह ध्यान और प्रेम दोनों मार्गो से चलकर मंजिल पर पहुंचने की बात है। इसमें पहले पेड़–पौधों पर प्रयोग फिर तन पर फिर मन पर और फिर आत्मा पर प्रयोग होता है। बहुत लम्बा मार्ग है और इस मार्ग में बहुत सी सिद्धियां मिलती है। साधक सिद्धियों में ही फंस जाता है और मंजिल पर बहुत कठिनता से पहुंचता है। इस मार्ग पर चलने वाले भारत में महात्मा बुद्व और चीन देश में लाओत्से हुए है। भारत में बुद्ध धर्म की शैली ठीक नहीं बैठी इसलिए उनके धर्म को बर्मा, चीन व जापान देश की तरफ निकाल दिया गया। इस समय में आचार्य श्री रजनीश जी तन्त्र का प्रयोग करने वाले हुए है। इन्होंने शास्त्र तो सब मन्त्र के पढ़े और सूत्र व ढंग तन्त्र के प्रयोग किए। इन्होंने तन्त्र के सूत्रों को बहुत हद तक खोला परन्तु सिद्धियों में अधिक फंस गए और तन व मन के योग से आगे नहीं जा सके। सक्रिय ध्यान योग के साधन में पूज्य श्री आचार्य रजनीश ने जो तन्त्र के सूत्र बताए हैं वह इस प्रकार हैः–

1. **प्रथम चरण** – दस मिनट तक नाक से तेजी से सांस ले और बाहर छोड़े।

2. **दूसरा चरण** – दस मिनट तक रेंचन का है। इसमें शरीर के सब अंगों को ढीला छोड़कर नाचे, गाए, रोए, कूदे, सिर, पैर व हाथ हिलाए या चिल्लाए। यानी जो भी शरीर करे, करने दें। यह क्रियाएं पागलों जैसी लगती हैं।

3. **तीसरा चरण** – इसमें दस मिनट तक अपने कंधे और गले

को ढीला छोड़ते हुए अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर, पंजों के बल खड़े होकर हू–हू–हू मंत्र का जोर से उच्चारण करें। जब हाथ नीचे लाए तब एडी धीरे से जमीन पर रखें।

4. **चौथा चरण** – यह चरण पन्द्रह मिनट का है। आप जहां भी हैं, रूक जाए और बिल्कुल चुपचाप होकर ओऊंम् की ध्वनि सुने तथा जो भी हो रहा है उसके साक्षी बनें।

5. **पांचवा चरण** – इसमें पन्द्रह मिनट तक नाचे, गाएं और खुशी मनाएं।

ऊपर बताए गए पांचों चरणों में केवल चौथा चरण अध्यात्म की तरफ इशारा करता है जो पंतजलि योग–दर्शन से लिया हुआ है। बाकी स्वास्थ्य के लिए ठीक हो सकते हैं। यह जो प्राणायाम योग जो आजकल रामदेव जी महाराज करा रहे हैं और जो बहुत पहले से हमारे योग–ग्रन्थों में लिखा हुआ है, यह स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए तो उचित है परन्तु अध्यात्म ज्ञान व आत्म ज्ञान की अनुभूति के लिए इसका कुछ भी काम नहीं है।

तन्त्र के कुछ और भी सूत्र हैं जो पूज्य आचार्य रजनीश जी ने बताए है। जैसे मीस्टिक रोज – यह 21 दिन का साधन है।

क. इसमें पहले सात दिन तक तीन घण्टे रोना ही रोना है और जब रोना बन्द हो जाए तब या बू कहें और फिर रोना शुरू हो जाए।

ख. इसमें हंसना ही हंसना है। जब हंसी बन्द हो जाए तब फिर शुरू हो जाए। यह भी सात दिन तक करना है।

ग. इसके बाद सात दिन तक मौन रहकर ध्यान करना है।

तान्त्रिकों ने इस विधि से मनुष्य के मन पर जो सुख–दुख के संस्कार पड़े हुए हैं, उनको समाप्त करने की बात कही है। यहां जो मन पर पड़े हुए पिछले कर्म या संस्कारों को रोकर, हंसकर मिटाने की बात है, वही मेरे मतानुसार ज्ञान की अग्नि से सब शुभ व अशुभ कर्म जलाकर भस्म किए जा सकते है। और यह ज्ञान की विधि बहुत आसान और अच्छी है। अतः इस सक्रिय ध्यान व मीस्टिक रोज से ध्यान–विधि में मैं कुछ लाभ वाली बात नहीं देखता हूं और न ही यह विधि हमारी भारतीय सभ्यता के साथ कोई मेल खाती है। भक्ति, प्रेम मार्ग, ज्ञान मार्ग व शब्द योग जैसे अच्छे मार्गों को छोड़कर हमने यह कठिन रास्ता क्यों अपनाना है? वह सीधा रास्ता जो आज तक हमारे ब्राहमण, ऋषि, मुनि, सन्त, महात्माओं ने चल–चल कर नैशनल हाईवे बना रखा है, उस पर चलकर हम परम आनन्द व परम शान्ति को अनुभव करें तो ज्यादा उचित होगा।

आचार्य श्री रजनीश ने पुस्तक व शास्त्र तो सब मन्त्र या गुरू मत के पढे यानी संस्कार सब गुरू मत से लिए और उन पर वैज्ञानिक ढंग से तर्क द्वारा कमजोरियां बता कर उनकी निन्दा की जो उचित भी है। परन्तु निन्दा कोई समाधान नहीं है। समाधान तो तभी हो सकता है जब उसमें कुछ सुधार की बात की जाए। हमारे आदि सन्त कबीर साहब ने तो निन्दक का भी यह कह कर बहुत सम्मान किया है –

निन्दक नेड़े राखिए, आंगन कुटी बसाय।
बिन साबुन और पानी के, मैल सब धुल जाय।।

भारत के आध्यात्मिक महापुरूष बहुत उदार चित्त रहें हैं। इन्होंने नास्तिक मत के चार्वाक पन्थ का भी उचित सम्मान किया है। इनकी दृष्टि में सब मनुष्यों में परमात्मा ही बैठा हुआ है। जैसे कहा है–

जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।
हर शै में जलवा तेरा हू ब हू है।।

आचार्य रजनीश ने योग में तन्त्र विधियों का प्रयोग करके जो सिद्धिया प्राप्त की और सब देशों के मनुष्यों को अपनी तरफ आकर्षित किया है वह हमारे भारत के आध्यात्मिक ज्ञान में पहला दर्जा है जो मन की एकाग्रता से सिद्ध हो जाता है। सच्चाई या हकीकत इससे आगे है।

परन्तु दुख इस बात का है कि आजकल योगी महात्मा बहुत कम है, कथाकर अधिक हैं जो अपने सत्संगों व प्रवचनों में पिछले महापुरूषों, सन्तों व अवतारों की बातें बताकर या पुस्तकें पढ़–पढ़ कर यह ज्ञान दे रहे हैं, उनका खुद का अनुभव नहीं है। यही कारण है कि अपने आपको संत कहने वाले महात्मा सज्जन मुनि शंकराचार्य जैसे मानव कमजोरियों के शिकार हो रहे है और इस अति पवित्र पद को कंलकित कर रहे हैं जिसे आप रोज समाचार पत्रों में पढते हैं व दूरदर्शन पर देखते हैं। मनुष्य का मन महा चंचल है। यह योग साधन व ज्ञान वैराग्य से ही वश में आता है या समस्थिति में रहता है।

कथा कीर्तन भी अपने स्थान पर ठीक हैं क्योंकि इससे अच्छे संस्कार मिलते है परन्तु समस्थिति में जीवन जीने के लिए योग साधन बहुत ही आवश्यक है। और जो महात्मा सत्संग देते हैं उनके लिए दिन में कम से कम 6 घण्टे का योग साधन जरूरी है, नहीं तो वह अपने महात्मा पद से नीचे गिर जायेंगे क्योंकि सत्संगियों की रेडियेशन (विकिरण धारा) का उन पर मानव कमजोरियों जैसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, अंहकार का प्रभाव होगा। इसलिए केवल स्नान करने, साफ कपड़े पहनने, तिलक लगाने या अन्य वेश–भूषा धारण करने से आप आध्यात्मिक नहीं बन सकेंगे। मेरा अनुभव यह

है कि मनुष्य का योगी होना बहुत आवश्यक है। बिना इसके प्रवचन देने से मन समस्थिति में नहीं रहेगा। इसलिए गुरू गद्दी पर बैठकर प्रवचन करने वाले महात्माओं से मेरा यह विनम्र निवेदन है कि पहले वह खुद साधक बने और यदि उनके मन में कोई भ्रम, शंका या अन्य कोई कमी है तो वे किसी अनुभवी महापुरूष से सम्पर्क रखें और उनसे मिलकर अपना समाधान करें परन्तु ऐसा करने में ये महापुरूष अपनी तौहीन समझते हैं क्योंकि गुरूपने का अहंकार भी कोई छोटा नहीं है। जैसे –

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बडाई और ईर्ष्या, दुर्लभ तजना येह।

प्यारे महापुरूषों! गुरू एक दर्पण है। जैसी उसकी रहनी है, शिष्यों में वही संस्कार काम करते हैं। यह बात मैं अपने प्यारे गुरूओं, आचार्यो व महापुरूषों को इसलिए लिख रहा हूं कि कई सज्जनों के पास मैं जाता हूं, बातचीत करता हूं और उनके सत्संग भी सुनता हूं, तब मुझे उन के योग साधन के अनुभव व मन की स्थिति से ऐसा अनुभव होता है कि योग–साधना में उन्हें उस परम तत्व की अनुभूति अभी नहीं हुई है। अतः पुस्तक रूप में वह बात जो मैं बताना चाहता हूं, प्यार से लिख देता हूं। परन्तु जिनको पूर्ण विवेक, अनुभूति व ज्ञान हो गया है, वे सज्जन पूज्य है। उनके तो दर्शनमात्र से ही आनन्द आ जाता है। जहां ऐसे महापुरूष रहते है; वह स्थान पवित्र है। उस स्थान के निकट प्रेम भक्ति की अति सुगन्ध की लहर आती है। यह तीर्थ स्थान उनके रहने की जगह ही तो बने हुए हैं। वृन्दावन जहां भगवान कृष्ण ने गायें चराई थी, आज भी पूज्य है।

प्यारे पूज्य महात्माओं। पहले का समय अवतारों व पैगम्बरों का था जो अपने समय में डंडे व तलवार के भय से धर्म सिखाते थे परन्तु अब सन्तों के अवतार का समय है। यह प्रेम–प्यार से ही

मनुष्य का मार्गदर्शन करते हैं, डरा धमका कर नहीं। आप सज्जन प्रेम का अवतार हैं। यदि आप खुद प्रेम में मस्त होकर, अपने मन–वचन–कर्म से पवित्र होकर, मनुष्य के कल्याण की भावना से मानवता का सुधार करेंगे तो सहज ही आपकी भावना पूरे विश्व की मानवता में फैल जायेगी और सब सम्प्रदायों के मनुष्य आपके मानवता धर्म, मजहबे इन्सानियत या Religion of humanity की तरफ अपने आप खिंचे आयेंगे और आपके दर्शन व वचन सुनकर शान्ति व आनन्द का अनुभव करेंगे। आज पूरे विश्व में यह मानव जाति बेचैन है। कोई शरीर के रोग से, कोई धन के अभाव से तो कोई मन की बेचैनी से दुखी है। इस मानवता का दुख आप महात्मा लोग ही पूर्ण समझ, विवेक तथा अनुभव ज्ञान से व अध्यात्म ज्ञान का अनुभव करके दूर कर सकते हैं। शर्त यह है कि पहले आप हर तरह से सुखी व सन्तुष्ट बनें तभी मानवता का कल्याण सम्भव है। यदि आप स्वयं ही मानव कमजोरियों का शिकार हैं तो दूसरों का क्या कल्याण कर सकेंगे? जैसे कहा है –

''आप सुखी तो जग सुखी, आप दुखी तो जग दुखी।।''

पूज्य महापुरूषों से विनम्र प्रार्थना

मेरे सभी पूज्य पण्डित, पुरोहित, गुरू, पीर, सन्त, वली, मुल्ला, पादरी आदि महापुरूष सज्जन आप सब धन्य हैं जो मानवता को अपने ज्ञान से सुख–शान्ति दे रहे हैं। मैं भी इसी तरह का ज्ञान देने वाला आपका ही एक भाई हूं। मैं लगभग 1960 से यह सत्संग का काम करा रहा हूं। परन्तु मेरा यह पेशा नहीं है। मैंने भारतीय सेना में अधिकारी पद पर सेवा की है और इस अध्यात्म विषय में यानी आत्मा–परमात्मा की खोज या ज्ञान प्राप्त करने में

मेरी रूचि रही है। और इसी रूचि या इच्छा के कारण मुझे सहज में इस तत्व ज्ञान की प्राप्ति हुई जिसके अनुभव के आधार पर मैं अपने आन्तरिक भाव व्यक्त करना चाहता हूं।

अपने प्यारे शंकराचार्यो, मुनियों व आश्रम वाले सन्त, महापुरूषों की बातें आए दिन समाचार पत्रों में पढते रहने से मैं अपने विचारों के स्तर पर आने को मजबूर हूं और अपने प्यारे पूज्य महापुरूषों से कुछ निवेदन करना चाहता हूं। मेरा पहला निवेदन तो यही है कि मानवता के मार्गदर्शन का व सत्संग देने का कार्य वही सज्जन करें जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार आदि के विकारों से ऊपर उठ गए हो और जो अपने योग–साधना में रंग, रूप रेखा से ऊपर प्रकाश व शब्द का अनुभव करते हों क्योंकि जो सज्जन स्वयं साधन सम्पन्न या अनुभवी नहीं हैं और केवल अपनी बुद्धि व समझ–बूझ से सत्संग देते हैं तो वे काम, क्रोध आदि विकारों से बच नहीं सकते। इसका कारण यह है कि मानव शरीर एक रेडियो स्टेशन है। जो जैसा होता है, उसके अन्दर से वैसी ही धारें निकलती रहती हैं। अतः जब गुरू की रेडियेशन या विकिरण धारा से शिष्यों को लाभ हो सकता है तो शिष्यों की काम, क्रोध इत्यादि की विकिरण धारा आप पर प्रभाव डालेगी और आप नीचे गिर जायेंगे। अतः आप सभी सज्जन पहले खुद साधन–सम्पन्न बने फिर दूसरों को ज्ञान दें तो आपका भी और आपके अनुयायियों का भी कल्याण होगा। गुरू गद्दी पर बैठने से न तो आपका कल्याण होगा और न आपके शिष्यों का। जिन महापुरूषों ने अपने निजी स्वार्थ मान–सम्मान या पन्थ के लिए गुरूआई की है तो ऐसे महापुरूषों के अन्दर से सत्यता व शान्ति की रेडियेशन नहीं निकल सकती और ये महापुरूष अन्तिम पद तक नहीं पहुंच सकते। इसीलिए बार–बार कहा जाता है कि :–

''गुरू तो पूरा ढूंढ रे, तेरे भले की कहूं।''

मेरा दूसरा निवेदन यह है कि अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए आप गुरू महात्माओं को खुद अपनी रोजी–रोटी की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि आप सत्संगियों का भेट चढावा खाते हैं तो आपका मन पवित्र नहीं रहेगा जैसे कहा जाता है कि – ''जैसा अन्न वैसा मन।'' मेरे प्यारे सज्जनों। यह मन की अति पवित्रता का मार्ग है। आपका मन, वचन व कर्म से पवित्र होना अत्यन्त अनिवार्य है और योगसाधना में आपका अनुभव मन के मण्डल यानी विचारों से ऊपर का होना चाहिए। यह मन से ऊपर शब्द का साधन ही नाम, निज नाम, सतनाम, अनहद नाद, उदगीत, प्रणव इत्यादि कहलाता है। महात्माओं के लिए हर समय योग में रहना जरूरी है ताकि जो भी उनका दर्शन करे, उसको सुख–शान्ति मिले। यदि यह अनुभव आपका नहीं बना है तो आप अपने आपको और अपने विश्वासियों को धोखा दे रहे हैं और इसके फल से आप बच नहीं सकते और इसका अन्त दुखदायी होगा।

योग साधन व अध्यात्म के हमारे पिछले महात्माओं ने चार स्तर बताए हैं। जैसे :–

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यान धारणा।
अधमा तीर्थयात्रा मूर्ति पूजा च धमाधमा।।

प्यारे महात्मा सज्जनों। मुझे गुरू कृपा से पहले ही दिन परम सन्त पं0 फकीरचन्द जी की अपार कृपा से सहजावस्था का अनुभव हो गया था। इसमें कुछ करना नहीं पड़ता। जैसे कबीर ने कहा है –

सहजे ही धुन होत है, हर दम घट क माहि।

सुरत शब्द मेला भया, मुंह की हाजत नाहि।।

परन्तु सब मनुष्यों का एक ही साधन नहीं हो सकता लेकिन जो भी हम मन, वचन व कर्म की पवित्रता से करेंगे तो हमारा काम बन जायेगा।

आप मुझे अहंकारी न समझना। मुझे आप सज्जनों से प्रेम है और आप सभी महापुरूषों को अपना गुरू मानकर मैंने अपने कुछ विचार लिखें है। मेरा भाव किसी का मन दुखाने का नहीं है। काल कर्म के चक्कर से महापुरूषों की गिरावट की जो बात मैंने अखबारों में पढी तो उन बातों का मेरे मन पर प्रभाव पड़ा। इसलिए मैंने अपने गुरूओं को समझ–बूझ वाली बात बताने का यत्न किया है। पता नहीं मेरे यह विचार आप तक पहुंचे या न पहुंचे।

मेरा मिशन 'मानवता धर्म' यानी Religion of humanity है। सभी सम्प्रदायों के मनुष्य मेरे ही भाई है। पहले समय कुछ और था अब समय बदल गया है। पूरे विश्व की मानवता एक बड़े नगर की तरह है और सबका परमात्मा एक ही है और आत्मा भी सबकी एक जैसी है। हमको मिलजुल कर खुशी से जीवन जीने की आवश्यकता है। विश्व के सब धर्म गुरूओं से यही अर्ज है कि सब इस ''मानवता धर्म'', ''मजहबे इन्सानियत'' या "Religiion of humanity" में शामिल होकर पूरी मानव जाति यानी सभी सम्प्रदायों के मनुष्यों को अपना अनुभव बताएं और सबको ज्ञान दें। सभी मनुष्य आपके भाई हैं और एक ही परमात्मा के हम सब बच्चे हैं। सब धर्म गुरू एक होकर काम करें तब यह हमारी दुनिया स्वर्ग बन जायेगी और धर्म के नाम पर लड़ाई–झगडें समाप्त हो जायेंगे। आज के वैज्ञानिकों ने वस्तु के साथ प्रयोग करके संसार में कितनी उन्नति की है? फिर धर्म गुरू तो मन, आत्मा, परमात्मा के विषय में बहुत

ऊंचा ज्ञान जानते हैं। क्या नहीं कर सकते?

पूज्य महात्माओं। मनुष्य की सुरत परमात्मा का एक छोटा अंश है जो यहां खेल खेलने आई है। यह संसार एक तरह की नाटकशाला ही है। इस विषय में एक नीचे का शब्द पढ़ें –

''यह जग नाटकशाला साधो, यह जग नाटकशाला।''
राजा रंक फकीर औलिया, दृश्य विचित्र निराला।

कोई तो ओढे शाल दुशाला, कोई सिर कम्बल काला।।

सुरत ने अद्‌भुत भेष बनाए, नाचे नाच रसाला।
गावे भाव दिखावे छिन्न–छिन्न, खेले खेल निराला।।

ब्रहम वेद से रचा जगत को, विष्णु गदा ले पाला।
शिव संहार का साज सजावे, साथ भूत बेताला।।

नाचे दुर्गा कमला शारद, काली छवि विकराला।
सावित्री का राग गायत्री, सैन वैन का ताला।।

शंख नाद की धूम मची है, डमरू शोर कराला।
रारंग सारंग बजे सारंगी, बीन सितार सुहाला।।

सुरति धुन है उद्‌गीत की बाणी, ओडम् ओडम् का ताला।
श्रोतागण सब सुनने आए, मन में भय निहाला।।

साधु दृष्टा साक्षी रूप है, सुख–दुख मन से टाला।
जिसने अपना रूप बिसारा, उर उपजा दुख शाला।।

साक्षी देखें विमल तमाशा, चित रहे सुखी सुखाला।
भूल भ्रम में जो कोई आया, सहे कर्म का भाला।।

रैन का सपना जग की लीला, स्वपन धन और माला।

आंख खुली तब कुछ नाहि दशा गुप्त जो देखा भाला।।

राधास्वामी सन्त रूप धर आए, दीन बन्धु सुदयाला।
प्रेम प्याला हमें पिलाया, सहज किया मतवाला।।

जो महापुरूष तत्व ज्ञान के अनुभवी हैं और सब योग का अनुभव समझ गए हैं तथा जिनको अभी तक अनुभव नहीं हुआ है तो कोई बात नहीं। वे मन, वचन व कर्म से सच्चे व पवित्र बनकर लगन से अनुभव की चाह तथा इच्छा रखकर काम करें। जितनी तड़फ और लगन होगी उतनी ही जल्दी उनको अनुभव हो जायेगा। जैसे कहा है –

फैज का दर है खुला बन्द नहीं हरगिज।
शर्त यह है कि मांगने कोई सायल आए।।

और जिन धार्मिक व ज्ञान देने वाले सज्जनों का कामांग तृप्त नहीं हुआ है और वह मजबूर है इस कामांग से, तो उनसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे अपनी गुरू, पीर, शंकराचार्य तथा मुनियों की वेश–भूषा उतार कर, साधारण वेशभूषा पहन कर सांसारिक मनुष्यों की तरह अपने कामांग की तृप्ति करें। इसमें कोई दोष वाली बात नहीं है। बात तो इस वेश–भूषा की है। अतः ''मुंह में राम, बगल में छुरी'' वाली बात न करें। और जो महात्मा की वेश–भूषा पहन कर सब पर हकूमत करना चाहते हैं, वे सज्जन भी इस पवित्र गुरू ज्ञान यानी अध्यात्म पद को नष्ट–भ्रष्ट न करें। क्योंकि यह मार्ग तो प्रेम का है। अतः जहां तक हों सके सबसे प्रेम करें। पहले तो राजा का लड़का ही राजा बनता था। अब तो सबके लिए द्वार खुला है। आप चुनाव जीत कर राजनेता बनो और जिसको दबाना हो दबाओ, जिसको मरवाना हो मरवाओ, जिसको जेल भेजना है भेजो जब

दूसरों का नम्बर आयेगा तब आपके साथ भी वही होगा जो आप दूसरों के साथ करेंगे। जब आप सब भोग कर उपराम हो जावें तब सन्यास लेकर यह गुरू, पीर तथा महात्मा की वेश–भूष पहनना अच्छा होगा।

महात्माओं से प्रार्थना करने का कारण

अब प्रश्न यह उठता है कि मैं महात्माओं को यह ज्ञान क्यों दे रहा हूं? क्या मैं अहंकारी हूं? या महात्मा सज्जनों को इस ज्ञान से अनजान समझता हूं? पूज्य महापुरूषो इसका एक कारण तो मैंने पहले लिख ही दिया है। दूसरी बात यह है कि पूरी दुनिया के महापुरूष जो मनुष्यता को सुख शान्ति से जीने का ज्ञान दे रहे हैं और आत्मा व परमात्मा तत्व को अनुभव करने की विधि बता रहे हैं, वे इस मानवता धर्म वाली बात समझ कर आज के समय की नई व आसान अनुभव की विधि का प्रयोग करके अपने जीवन को परम सुख और परम शान्तिमय बनाते हुए पहले तो उस अनुभव का सुख व आनन्द आप स्वयं अभी इसी जीवन में अनुभव करें और धर्म के नाम पर विश्व के सभी सम्प्रदायों को एक नाम देकर, धर्म–कर्म में जो भिन्नता है इसको हटा कर 'मानवता धर्म' के नाम से सबकों एक ही नाम से समझें। क्योंकि आज बुद्धि विज्ञान का युग है। सभी धर्म सम्प्रदायों का परमात्मा एक ही है। परन्तु अलग–अलग समय, भाषा, देश व क्षेत्र के विचार से किसी ने उसे भगवान कहा, किसी ने खुदा कहा, किसी ने God कहा तो किसी ने कुछ और कहा। वास्तव में यह सब नाम उस एक ही शक्ति के हैं और सब मनुष्य उसी के ही बच्चे हैं। खेल सब विश्वास का है। आत्मा भी सबकी एक जैसी है। यह नहीं है कि हिन्दू की आत्मा और है और मुसलमान व

ईसाई की और है। फिर धर्म के नाम से यह लड़ाई–झगड़ा क्यों हो? आज समय बदल गया है और सभी बुद्धिमान् सज्जन इस बात को समझते है। अतः ये दुनिया के गुरू, पीर इस बात को समझें और किसी को कोई भ्रम, शंका हो तो उसको यह 'मानवता–धर्म समझा कर उसे दूर करें।

मेरे लिए तो यह पूरी दुनिया के धर्म 'मानवता–धर्म' के ही हैं। सब मनुष्य भाई–भाई हैं, बस भाषा व जीवन शैली अलग–अलग है। जैसे आज के वैज्ञानिकों ने आपस में मिलकर एक–दूसरे से विज्ञान सीखकर कितनी तरक्की की है। उसी प्रकार हम धर्म–कर्म का काम करने वाले इस बात को समझकर अपना अनुभव करें और मानवता को आपस में मिलकर जीना सिखायें। यह काम मैं अकेला नहीं कर सकता। आप सभी धर्म गुरू पहले एक देश के इक्ट्ठे होकर बात समझे फिर दूसरे देशों के धर्म कर्म वाले गुरू पीरों से मिलें और उनको साथ लें। यह काम आप तभी कर सकेंगे जब पहले खुद योग–विधि से योग साधन का अनुभव कर लें, फिर हम दूसरे गुरू, पीरों से मिलें–जुले और प्रेम बढाए। मैंने ऐसा देखा है कि इन पूज्य गुरू, महात्माओं में इतना अहंकार है कि एक ही सम्प्रदाय के गुरू आपस में कभी मिलते नहीं है और वे अपने आपको खुदा समझे बैठे हैं। इनको अपना मरना तो दिखता नहीं है, दूसरों को जरूर देखते हैं।

मैंने अपने जीवन में कोई आश्रम नहीं बनाया और न ही कोई शिष्य सिवाय डा० कमला के। मेरे गुरू महाराज के आश्रम में जो भी महात्मा गुरू गद्दी पर बैठता है, उसी का मैं आदर सम्मान करता हूं। दूसरे जो भी गुरू हैं चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हो, उनके शिष्य जब मेरे सम्पर्क में आते हैं तो उनको जो वें समझना चाहते हैं, समझा देता हूं और उन्हें उनके ही गुरू के पास रहने की

आज्ञा देता हूं, जिनसे उन्होनें नाम लिया हुआ होता है। और जो नए लोग मेरे से प्रभावित होते हैं उनको भी अपना शिष्य न बनाकर जहां उनका विश्वास हो भेज देता हूं और रहस्य बता देता हूं। अर्थात् मैं सभी अन्य गुरूओं के शिष्यों को जो मुझसे प्रभावित होते हैं, अपनी तरफ आकर्षित न करके, रहस्य समझा कर उनका उन्हीं गुरूओं में विश्वास बना देता हूं। क्योंकि धर्म केवल विश्वास का विषय है। न तो मैं किसी को कुछ देता हूं और न ही कोई दूसरा गुरू देता है। यह तो शिष्य के ही आस, विश्वास व श्रद्धा का फल उसको मिलता है। बाहरी गुरू केवल जीवन गुजारने का ढंग व संस्कार देता है। वास्तविकता यह है कि मनुष्य स्वयं पूर्ण है। सारी शक्ति उसी के अन्दर है। सतगुरू उसे यह निश्चय करा देता है कि गुरू बाहर नहीं, तुम्हारे अन्दर हैं। जैसे कहा है–

''घर में घर दिखलाय दे सो सतगुरू पुरूष महान।''

इन महात्माओं ने बात को पर्दे में रखकर लोगों को अपने मतलब, मान प्रतिष्ठा व पन्थ के लिए अपने पीछे लगाया हुआ है।

मैं आजकल बहुत से गुरू, पीर, महाराजाओं में धर्म के प्रति कट्टरता व तंगदिली देखता हूं और उनके शिष्यों को यह आदेश होता है कि वे किसी दूसरे महापुरूष के सत्संग में न जाएं। मैं चाहता हूं कि ये महापुरूष इस 21वीं सदी में ऐसे अंधेरे में न रहकर उदारचित्त बनें। मेरे पास सत्संग में लगभग सभी सम्प्रदायों के शिष्य आते हैं। मेरा सत्संग मानवता का है। आप गुरू, पीरों को भी इस मानवता धर्म का ज्ञान देने की बात कहता हूं क्योंकि आप एक सम्प्रदाय के विचारों में बन्धे हुए हैं जो बहुत पुरानी बात हो गई है। उस समय जब महापुरूषों ने यह ज्ञान जिस भाव से दिया था, ठीक था। परन्तु समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है। जैसे कहा है –

जमीं बदलती है, आसमां बदलता है।
मकीं मकां जो बदले, समां बदलता है।

नहीं है एक बतिरे पर यह जहां कायम।
सभी बदलते हैं जब पूरा जमा बदलता है।

आज का मनुष्य बुद्धिमान है और वह यह समझता है कि परमात्मा दो–चार नहीं हैं। उसके नाम चाहे जितने बोले जाए परन्तु जो शक्ति यह संसार चला रही है, वह एक है और मनुष्य भी सब एक ही जैसे तत्व से बने हुए हैं और सभी सुख चाहते हैं, ज्ञान चाहते है तथा जीना चाहते हैं। फिर यह लड़ना–झगड़ना केवल अज्ञानता और नासमझी की बात है। अतः पहले आप यह खुद समझ कर कि मनुष्य क्या है? कहां से आया है? और कहां जायेगा? तथा इस समय उसे क्या शुभ कर्म करने चाहिए? फिर यह बात अपने शिष्यों को बताएं। क्योंकि यह आश्रम, गद्दी और शिष्य आपके साथ जाने वाले नहीं है। आपके ही शुभ–अशुभ कर्म आपके साथ जाने हैं।

मैं आपको एक बहुत बड़े पूज्य महात्मा के अन्त समय की बात बताता हूं। उसने ज्ञान–ध्यान के मीठे सत्संग देकर बहुत बड़ा आश्रम बनाया और अपने लाखों शिष्य बना लिए परन्तु खुद योग–साधना का अभ्यास किया नहीं जो उसे करना चाहिए था। जब उनका अन्तिम समय आया तब वह बीमार हो गए और दो वर्ष तक बहुत बीमार रहे। जब वह महात्मा तकलीफ के कारण हाय–हाय करने लगे तब उनके सेवक ने कहा कि महाराज जी आप ध्यान–समाधि लगाकर मन के मण्डल से ऊपर चले जाओ। तब महात्मा जी ने कहा कि भाई जो काम करना था, वह नहीं किया। पूरा समय शिष्य बनाने, उनको नाम देने तथा आश्रम बनाने में ही व्यतीत कर दिया। यह उनका अन्तिम समय का अफसोस था। अतः सभी महात्माओं को पहले अपना काम बनाना चाहिए, बाद में दूसरा काम

करना चाहिए क्योंकि अपने कल्याण में ही जग का कल्याण है और समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता वह तो प्रतिदिन निकट आ रहा है। जैसे कहा है–

आच्छे दिन पाछे गए, हरि से किया नहीं हेत।
अब पछताए क्या होत है? जब चिड़िया चुग गई खेत।

दादू दावा मत कर, बिन दावा दिन काट।
बहुतक सौदा कर गए, इस पंसारी की हाट।।

तो आप महापुरूषों को ज्ञान देने का मेरा प्रयोजन आप समझ गए होंगे और यदि मैं कही गलती पर हूं तो कृपया आप मेरा मार्गदर्शन करें। परन्तु बात बुद्धि के दर्जे की न हो अपितु अनुभव के आधार पर मार्गदर्शन की बात हो, क्योंकि परमात्मा की लीला मनुष्य क्या समझेगा? उसकी महिमा (ज्ञान) अपरम्पार है। मनुष्य केवल अपना अनुभव ही बता सकता है।

मन, वचन व कर्म से पवित्रता

सन्त, महापुरूषों का मार्ग जीवों के कल्याण के लिए होता है। जो साधु महात्मा जीवों के हित के लिए काम न करके अपने डेरे, आश्रम या पन्थ के लिए काम करता है वह जिन्दा नहीं है। जिन्दा वह है जो सबके लिए जीता है। हजूर सावन सिंह जी महाराज कहा करते थे कि सन्त किसी धर्म, पंथ या सोसाइटी को स्थापित नहीं करते। उनका उद्देश्य केवल जीवों को सुखी करना है। अनुभव के पश्चात् मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि केवल पुस्तकीय या शास्त्रीय ज्ञान वाले व्यक्ति न गुरू कहलाने के अधिकारी है और न ही वे आध्यात्मिक गुरू हों सकते हैं। जब तक कि वो स्वयं विचारों से ऊपर उठकर इस परम तत्व का अनुभव नहीं कर लेते। जो महापुरूष गुरूआई का काम

करते हैं वे अपने अन्दर झांक कर देखें कि क्या वे सब प्रकार के दुख, विचार व भ्रम से मुक्त हैं? क्या वे निर्भय व बेफिकरी की अवस्था को प्राप्त कर चुके है? यदि नहीं तो फिर उन्हें अपने आपको आध्यात्मिक गुरू या महात्मा के रूप में जनता के सामने पेश करने का कोई हक नहीं है। इससे जीवों का कल्याण कभी भी नहीं हो सकता। यह धार्मिक सम्प्रदायों में झगड़ें इस कारण से हैं कि इनके गुरू, आचार्य या उपदेशक स्वयं साधन–सम्पन्न या अनुभवी नहीं है।

गुरू महात्माओं का काम है– जीवों के भ्रम व शंका को दूर कर सीधा रास्ता बताना। वह जीवों को स्पष्ट बताएं कि मालिक एक है और हम सब उस परम तत्व के अंश है। वह घट–घट में व्यापक है। जैसे कहा है –

भान रूप मालिक सुन भाई।
हर हिरदे में रहा समाई।।

यह उस मालिक के नाम पर जो हजारों मत मतान्तर, पंथ व सम्प्रदाय बने हुए हैं और आपस में एक दूसरे के प्रति घृणा, नफरत व ईर्ष्या रखते हैं और अपने मत को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं। यह सब अज्ञानता का कारण है और यह अज्ञानता व भेदभाव तभी दूर हो सकता है जब हम महात्मा लोग स्वयं परम तत्व का अनुभव करें फिर लोगों के अज्ञान को दूर करने की सही शिक्षा दें कि सभी धर्म एक हैं और वह परमात्मा अंश रूप में सभी के अन्दर मौजूद है। और यह मानव धर्म ही सबसे बड़ा धर्म है। अतः यदि ये साधु महात्मा अपना काम मन, वचन व कर्म से सच्चाई के साथ करें तो मैं समझता हूं कि साधारण जनता में काफी सुधार आ सकता है। जैसे राजा यदि जरूरत के समय प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता तो वह राजा कहलाने का अधिकारी नहीं है। इसी प्रकार यदि सन्त महात्मा रोचक व भयानक शिक्षा देकर अपना निजी स्वार्थ व

मान–सम्मान प्राप्त करते हैं तो वे महात्मा कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। और वे इस कर्म की सजा से बच नहीं सकते। यहां तो कुछ दे लेकर इन्सान छूट भी सकता है परन्तु कुदरत के कानून से कोई बच नहीं सकता है। जैसे कहा है

''कर्म जो–जो करेगा तू, वही फिर भोगना भरना।।''
कर्म–प्रधान विश्व कर राखा।
जो जस कीन्हा तस फल चाखा।।

मैंने अपने जीवन में बहुत से महात्माओं का अन्त समय देखा है जिन्होंने बहुत तकलीफ में रहकर अपना शरीर छोड़ा है। अतः पहले खुद अपने आप में सच्चा बनकर यह ज्ञान देना चाहिए क्योंकि यह करनी का मार्ग है जैसे कहा है :–

यह करनी का भेद है, नाहिं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार।।

मेरा सत्संग अधिकतर बुद्धिमान लोगों, आचार्यो, गुरूओं व महात्माओं के लिए हैं। प्रायः डेरों, धामों व आश्रमों के महात्मा इस प्रकार का सत्संग नहीं कराते क्योंकि ऐसी स्पष्ट शिक्षा से उनके आश्रम व धामों के टूटने का भय बना रहता है। इसलिए ये महात्मा लोग स्वार्थवश भोले–भाले जीवों को रहस्य न समझा कर जीवन भर अपने पीछे लगाए रखते हैं। वास्तव में इन आश्रम, डेरे, धामों का लक्ष्य रहस्य बताकर सच्चाई से अवगत करा कर धीरे–धीरे उन्हें मुक्त करना है न कि फंसाए रखना। जैसे स्कूल व कालेज बच्चों को शिक्षा देने के लिए होते हैं न कि पूरा जीवन वहीं पर बिताने के लिए। मैंने अपने जीवन में कोई आश्रम या डेरा नहीं बनाया। परन्तु यह अर्थ नहीं कि मैं इनके विरूद्ध हूँ। इनका होना बड़ा आवश्यक है

क्योंकि इनके बिना काम नहीं चल सकता। परन्तु इन गुरू महात्माओं को अपने आपको हमेशा आन्तरिक रूप से इन डेरे, आश्रमों से मुक्त रखना चाहिए। यदि इनका सम्बन्ध इन डेरे, धामों से मन से बना रहता है तो इनके शिष्य कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे। क्योंकि मनुष्य शरीर एक रेडियो स्टेशन है। जो जैसा होता है, उसके अन्दर से वैसी ही धारें निकलती है। इसलिए जो महापुरूष अपने मान–सम्मान या पंथ, आश्रम के लिए गुरूआई करते हैं, उनसे सच्चाई की धारें नहीं निकल सकती। इसीलिए बार–बार कहा जाता है :–

''गुरू तो पूरा ढूंढ रे, तेरे भले की कहूं।''

अतः मेरी यह ह्रादिक इच्छा है कि सन्त, महात्मा जीवों का सही मार्ग–दर्शन करें ताकि इन भोले–भाले जीवों को सहारा मिलता रहे जिससे वे ठीक मार्ग पर चलते हुए सुख शान्ति प्राप्त कर सकें। असली शक्ति तो हर मनुष्य के मन में है। इस मन को एकाग्र करके जो भी विचार किया जाए, उससे हर मनुष्य को सफलता मिलती है। जैसे जब तक Healing power (स्वस्थ करने वाली शक्ति) रोगी में नहीं होगी तो कोई दवाई या डाक्टर उसे लाभ नहीं दे सकता। इसी प्रकार जब तक मनुष्य में आस– विश्वास या श्रद्धा नहीं है तो कोई गुरू, पीर उसकी मदद नहीं कर सकता है। इसलिए महापुरूषों का कार्य तो आशावादी विचार व शिव संकल्प देकर जीवों को प्रेम व ध्यान का मार्ग बताना है। लेकिन यह तभी होगा जब हम महात्मा लोगों की खुद की रहनी ऐसी हो। सच तो यह है कि ये डेरे, धाम, आश्रम व मठ आदि आपके विचारों से ही बने हैं और यह चेलों की भीड़ भी आपके ही विचारों का फल है तथा लोगों के अन्दर जो रूप प्रकट होकर उनकी तरह–तरह की मदद करता है, वह उन्ही के आस–विश्वास व श्रद्धा का फल होता है। यह मेरा रोज का अनुभव

है। और यदि कोई महात्मा किसी की सहायता करने जाता है तो वह इसका स्पष्ट वर्णन करें। सतपुरूष कभी यह नहीं कहते कि अमुक काम उन्होंने किया अपितु यह कहते है कि उस मालिक ने किया। क्योंकि वह मालिक ही उनके अन्दर आकर वह काम करता है। अतः यदि आप मन, वचन व कर्म की पवित्रता यानी सच्चाई व ईमानदारी से यह कार्य कर रहे हैं तो कोई बुरी बात नहीं है। और यदि केवल महात्मा की वेश–भूषा पहनकर भोले–भाले लोगों को धोखा दे रहे हैं तो यह बड़ा भारी जुर्म है और इस कर्म का फल आपको अवश्य भोगना पड़ेगा। जैसे धर्मराज युधिष्ठिर नीति में झूठ बोलने से ढाई घड़ी तक नरक में जा सकते हैं तो आप भला कैसे बच सकते है?

पूज्य महात्माओं का कर्त्तव्य दुनियां व राजनीति के झगड़ों में फंसने का नहीं है अपितु अपना और अपनी संगत का कल्याण करना है। अभी तक संगत छोटे–छोटे सम्प्रदायों में बंटी हुई है। अब समय है पूरी मनुष्य जाति को अपनी संगत समझ कर ज्ञान देने का। अतः तंगदिली छोडकर, उदार ह्रदय बनकर सब मनुष्यों को प्यार से अपना अनुभव बांटो, दूसरे महात्माओं से मिलो–जुलो और आपस में एक–दूसरे का सम्मान करो। यह अहंकार मत करो कि आपका आश्रम बड़ा है और आपके पास बहुत चेले हैं तथा दूसरों के पास कम। आप यह समझें कि जो भी सज्जन जहां भी अध्यात्म ज्ञान का काम अपनी योग्यतानुसार कर रहा है पूज्य है। सब सुरतें अपना–अपना खेल खेल रही है और हम सबसे प्यार करें।

प्यारे महात्माओं। यह दुनिया परमात्मा ने मनुष्य के लिए बहुत सुन्दर खेल खेलने के लिए बनाई है। मनुष्य अपने ही मन का जाल बनाकर दुखी होकर काल कर्म का मारा हुआ, भटकता हुआ आपकी शरण में आता है। वह आपसे सहारा चाहता है और आप इस काल माया के मारे हुए मानव की तभी सहायता कर सकते हैं

जब आप खुद पूर्ण योगी हैं। जैसे भगवान कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि ''हे अर्जुन! तू योगी बन। योगी सभी धर्म–कर्म करने वालों में श्रेष्ठ होता है।'' मेरी भी आप सज्जनों से यही प्रार्थना है कि आप मन, वचन व कर्म से पवित्र रहकर योगी बने। यह शरीर का भेष तो दिखावा हैं। जैसे कहा है –

क्या माला मुद्रा के पहने, चन्दन घिसे ललारा।
मूंड मुंडाए सिर जटा रखाए, अंग लगाए छारा।।

क्या पूजा पाहन की कीजे, जो नहीं तत्व विचारा।
सार शब्द सतगुरू का चिन्हे बिन, हो नहीं निस्तार तुम्हारा।।

यह शरीर का स्वांग और वेश–भूषा पहले की बात है जिसका कुछ मतलब था। अब तो यह एक दिखावा है। इसमें कुछ सच्चाई नहीं। अपनी रोजी–रोटी कमाते हुए और संसार की सब चुनौतियों का सामना करते हुए योग–साधना करो। कौआ चाल छोड़कर हंस गति पर चलो। सन्तों में कोई हेरा–फेरी या राजनीति वाली बात नहीं होती। वह तो मन, वचन, कर्म से पवित्र आत्मा है जो समस्थिति में रहता है।

यदि आप Positive (सकारात्मक) व Negative (नकारात्मक) विचारों से ऊपर रहते है और आपकी सुरत ऊपर (चोटी) से आने वाली सतनाम की धारा से अधिक समय जुड़ी रहती है तो आप सहज योगी हैं परन्तु ऐसी स्थिति लाखों में किसी एक की होती है। और यदि आप ध्यान, धारणा के समय घण्टा या दो घण्टा उस राम नाम की धुन का अनुभव करते हैं तो आप अपने आपको योगी या आध्यात्मिक सज्जन कह सकते हो। योगी मनुष्य की यह पहचान है कि वह हमेशा हंसमुख रहकर जीवन लीला करता है।

मैंने यह पहले भी लिखा है कि अधिक समय मेरी सुरत उस

राम नाम की धार से जुड़ी रहती है और मेरी समस्थिति बनी रहती है जैसे :–

''उठे बैठे खड़े उताने, कहे कबीर हम वाही ठिकाने।''

परन्तु कभी–कभी बाहर के विचार मेरे मन पर प्रभाव डालते हैं और मैं नीचे विचारों में आ जाता हूं। जैसे मैं पूज्य गुरू, शंकाराचार्य व मुनि महात्माओं की घटिया चर्चा सुनकर अपनी समस्थिति वाली हालत से नीचे आकर यह सब लिखने को मजबूर हुआ हूं क्योंकि में इन गुरू महात्माओं की निन्दा सुनना नहीं चाहता। यह पद बड़ा पवित्र है। राजनेताओं की तो यह रोज की बाते हैं। इनमें सबसे बड़े देश के नेता अमेरिका के राष्ट्रपति के नाजायज सैक्स प्रेम का हाल तो आप सब सज्जन जानते ही हैं। परन्तु शंकाराचार्य का जेल में जाना, जैन मुनि का किसी साधवी के साथ नाजायज सम्बन्ध होना आदि घटनाएं इस पद को कलंकित करने वाली हैं। इन बातों के प्रभाव के कारण ही मैं देश के सब महात्माओं को यह लिखने को मजबूर हुआ क्योंकि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। परन्तु साथ ही यह बात भी जानता हूं कि यह उनकी मजबूरी है जैसे एक गीत में किसी ने गाया है।

होयेंगे यही झमेले, यह जिन्दगी के मेले।
दुनिया में कम न होंगे, अफसोस हम न होंगे।।

भाव यह है कि छोटे पद से लेकर बड़े पद तक हर मनुष्य यहां खेल खेलने आया है और वह अपना कर्म भोगने को मजबूर है। परन्तु दुनियादारी के विचार से हम इसे भला–बुरा कहते है और कहना भी चाहिए क्योंकि जिस समाज में हमने जन्म लिया है, पले हैं–पोषे हैं, उसके हिसाब से यह ठीक नहीं है। जैसे किसी का जवान लड़का गुरू को प्यारा हो जाए और कोई बहुत अनुभवी सन्त जो यह

समझता है कि परमात्मा जो करता है, अच्छा ही करता है, वह वहां जाकर उस मौके पर यह बात साफ नहीं कह सकता। उसे यह बात मन में ही रखनी होगी कि जो हुआ, अच्छा हुआ। वास्तव में यहां जो कुछ होता है या कोई कुछ करता है तो वह यह करने को मजबूर है जैसे कहां है– होय है वहीं, जो राम रचि राखा।'' ''करे करावै आप ही आप, मानुष के नहीं कुछ भी हाथ'' परन्तु यह बात सत्संग साधन से ही समझी जा सकती है। इसलिए पूर्ण अनुभवी महापुरूष का होना अत्यन्त आवश्यक है। शान्ति शान्त पुरूष के सत्संग से ही मिलती है। क्योंकि जो मनुष्य स्वयं दुख–सुख से परे चला गया है और हर समय शान्त रहता है, वही सच्चाई के भेद को समझ कर जीवों के मन ही हालत जानकार वैद्य या डाक्टर की तरह का ईलाज कर सकता है। किसी दूसरे के वश की बात नहीं है कि वह दूसरों को ठीक मार्ग पर लगा सके। अतः अन्त में मेरी सभी पूज्य महात्माओं से यही प्रार्थना है कि वह अपने मन को साफ व पवित्र करके, निबल–अबल व अज्ञानी जीवों के मार्ग दर्शक बनकर संसार में सच्चाई व असलियत की शिक्षा का प्रचार करें। क्योंकि

जीव अनजान मर्म न जाने, उनको तुम बहकाना नहीं।
लालच में अपने उनको, किसी कारण फंसाना नहीं।।

सतज्ञान दाता

वन्दनम् सतज्ञान दाता, वन्दनम् सत ज्ञानमय।
वन्दनम् निर्वाण राता, वन्दनम् निर्वाणमय।।

भक्ति मुक्ति योग युक्ति आपके आधीन सब।
आप ही हैं सिंध सदगति, जीव जन्तु मीन सब।।

आप गुरू सतगुरू दया और प्रेम के भण्डार हैं।

आप कर्त्ता धर्ता है, करतार जगदाधार हैं।

ऋद्धि सिद्धि शक्ति नौ निधि, हैं चरण में आपके।
बच गया भव दुख से जो आया शरण में आपके।

भक्ति दीजे नाम की, सतनाम में विश्राम दे।
राधास्वामी अपना कीजे, राधास्वामी धाम दें।।

यह सतज्ञान दाता वही सज्जन हो सकता है जिसने किसी सतज्ञान दाता की संगत, सेवा तन–मन– धन से की हो और उसकी आज्ञा में रहकर अपना योग–साधन करके इसी मनुष्य जीवन में ही पूर्ण समझ, विवेक, अनुभव करके ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। ज्ञान बहुत सी धर्म–कर्म की पुस्तकें पढ़ने की बात या बहुत सत्संग सुनने की बात नहीं है और न ही ज्यादा समाधि लगाने की बात है। यह तो एक अनुभव की बात है। जैसे कहा है –

''सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा, तू तो पड़ा भ्रम के कूपा।''

जिन महात्माओं को मैं अधिक साधन करते या समाधियां लगाते देखता हूं तो मैं समझ जाता हूं कि महात्मा जी को अभी तक ज्ञान नहीं हुआ है। यह अभी प्रयास में लगे हैं, क्योंकि जिनको ज्ञान हो जाता है, उनको कुछ करने धरने की जरूरत नहीं रहती। यह सब सहज में हो जाता है। जिस प्रकार कोई शुरू में गाड़ी चलाना सिखता है तो उसे सब सीखना पड़ता है परन्तु सीखने के बाद वह सहज में गाड़ी चला लेता है और उसे कोई भय नहीं रहता है। इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर मनुष्य की स्थिति सहज हो जाती है और उसे कोई भ्रम नहीं रहता है। मैं जब किसी महात्मा को ध्यान लगाते देखता हूं तो विचार आता है कि मैं इसे इस भ्रम से निकाल कर सही ज्ञान दे दूं परन्तु फिर होश करता हूं कि भाई। यह गुरू गद्दी पर बैठे हैं और इनका अहंकार आसमान को छू रहा है। भला ये मेरे जैसे व्यक्ति से

ज्ञान कैसे ले सकते है? जैसे कहा है –

''कहां राजा भोज और कहां गांगला तेली।''

अतः मैं स्थिति को देखकर चुप्पी साध लेता हूं। अब प्रश्न उठता है कि यह योग साधन नहीं तो फिर यह ज्ञान क्या है? इसके लिए वही शब्द है जो पुस्तक में शुरू में लिखा है –

भाई सोई सतगुरू सन्त कहावै, जो नैनन अलख लखावै।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढावै।।

ज्ञानी पुरूष यह जान जाते हैं कि यह मनुष्य जीवन चार तत्वों से बना है – शरीर, मन, आत्मा और सुरत। इनमें यह चौथा तत्व सुरत मूल खिलाड़ी है जो परमात्मा का छोटा अंश है और यहां इस स्थूल लोक में आकर अपने संस्कारों के अनुसार खेल खेल रहा है या लीला कर रहा है। इसका आज तक अध्यात्म ज्ञान के खोजी सज्जनों को पता नहीं चला है कि यह सुरत कब से खेल खेलने आई हुई है? और कब अपने निज घर वापिस जायेगी। अनुभवी सज्जनों का यही कहना है कि जब यह सुरत खेल खेलते–खेलते थक जायेगी यानी इस लोक के किसी काम में इसकी रूचि नहीं रहेगी, तब यह वापिस जाने को तैयार होगी। और सिद्धान्त के अनुसार ''जहां चाह, वहां राह'' अर्थात् "Where there is demand, there' is supply" के अनुसार जब इस संसार के खान–पान, रहन–सहन, सैक्स, सन्तान, धन–दौलत आदि में इसकी कोई रूचि नहीं रहेगी तब इसको कोई रास्ता बताने वाला मिल जायेगा और यह योग साधना तथा विधि का प्रयोग करके अपने निज रूप का अनुभव कर लेगी। इस निज रूप के अनुभव का नाम ही ज्ञान है। इस ज्ञान से ही मनुष्य जीवित रहते मुक्ति पद को प्राप्त कर सकता है और इसी का नाम निर्वाण या मोक्ष पद है। ऐसी स्थिति आने पर यह सुरत जब

शरीर छोड़ेगी और यहां उसका किसी वस्तु में लगाव नहीं रहेगा तो यह उस परमात्मा रूपी सागर में जाकर मिल जायेगी जिसकी यह बून्द रूप है। इससे आगे तो यही कहा जा सकता है कि –

''खुदा की खुदाई खुदा ही जाने।''
या
तेरी लीला कौन जाने, तू तो अपरम्पार है।
तेरी एक दृष्टि से, दुखियों का बेड़ा पार है।।

इस विषय में मेरे गुरू महाराज जी का कहना है–

हस्ती मस्ती में आकर, ऐसी बस्ती में रहती है।
जहां न माया है न ब्रहम है, न सत् की हस्ती है।।

मगर जिस्म दिल व रूह के गिलाफों में आकर के, अपने सफरे जिन्दगी का अनुभव ब्यान करती रहती है।'' ऐसा ज्ञानी, अनुभवी, सत् में रहने वाला महापुरूष यदि लोगों को उपदेश देता है तो जीवों का कल्याण हो सकता है। इसके अतिरिक्त जिन आचार्यो या प्रचारकों को सतगुरू से सत्संग कराने का आदेश मिले केवल वही यह सत्संग कराए तो अच्छा होगा। बिना गुरू आज्ञा के सत्संग कराने से उनकी अपनी हानि होगी और साथ ही वे दूसरों का नुकसान करेंगे। क्योंकि अनुभव के बिना इस अवस्था में ठहरना कठिन है और सत्संगियों की रेडियेशन से वह गिर जायेगा। मैं एक बार जब अपने गुरू महाराज जी की मुट्ठी चप्पी की सेवा कर रहा था तब उन्होंने मुझे कहा था कि लालचन्द। तुम्हारी यह सेवा नहीं है। संसार में जीव बहुत दुखी है और तरह–तरह के भ्रम, शंकाओं में उलझे हुए है। तुम मेरे इस ज्ञान को अनुभव करके बिना मुआवजा लिए दूर–दूर तक इसे बांटना ताकि लोग भ्रम से मुक्त होकर सुख से जी सकें। और मैं गुरू आज्ञा से सन् 1962 से यह सत्संग का काम

कर रहा हूं और अब 82 साल की आयु में भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार यह काम करते हुए बहुत ही सुख, आनन्द व प्रेम का जीवन जी रहा हूं। आगे सब गुरू मौज पर है।

सार–शब्द

''निज व्यौपारी नाम का, हॉट चलो भाई।''

साध सन्त गाहक भये, गुरू हाट लगाई।
सार शब्द कुछ वस्तु है, सौदा करो भाई।।

भाव खुला पचरंग का, बहु करता दलाली।
जा के हाथ विवेक है, करि देत सवाई।।

पाप पुण्य पलरा भये, सुरत भई डांडी।
ज्ञान दुसेरा डारि के, पूरा करिवाई।।

कर सौदा घर को चले, रोका दरबानी।
लेखा दे निज नाम का, कहां का व्यौपारी।।

पानी सी बाणी भई, गुरू छाप दिखाई।
इतना सुन कायल भये, जम शीश नवाई।।

सन्त चले सतलोक को, छोड़ा संसारी।
कुन्दन भये दरबार में, प्रभु नजर गुजारी।।

कहें कबीर बैठो साहो, सीख लेहो हमारी।
काल कल्प व्यापे नाहि, इह नफा तुम्हारी।।

कबीर साहब ने जो ऊपर शब्द में कहा है उसका असली भाव तो वही जानते हैं परन्तु मैं यह समझा हूं कि जिनको गुरू से निज नाम व सतनाम मिल जाता है, उन पर इस संसार के जीवन

में काल और माया का प्रभाव बहुत कम होता है। कबीर साहब ने तो ''काल कल्प व्यापे नाहि'' यह बात बड़े हौंसले से कही है। परन्तु मेरी स्थिति यह है कि जब मैं किसी कारण से उस निज नाम से किसी बाहर के प्रभाव से अलग हो जाता हूं या भूल जाता हूं तो कुछ समय के लिए विचारों में आ जाता हूं। कबीर साहब आदि गुरू और पूर्ण सन्त थे। उन्होंने और राधास्वामी दयाल ने शुरू से अन्त तक योग का पूरा अनुभव किया है और हर योगिक स्थानों को बहुत खोलकर बताया है। मुझे तो अध्यात्म ज्ञान तथा धर्म के विषय में कुछ मालूम ही नहीं था। पहले ही दिन गुरू कृपा से इस निज नाम का अनुभव हो गया था। समझ, विवेक और ज्ञान बाद में परम दयाल जी के सत्संग व उनका साहित्य पढने से हुआ। यह अलग–अलग प्रकृति व अधिकार, संस्कार के अनुसार है। किसी को समझ, विवेक पहले होता है और अनुभव बाद में और उसके बाद ज्ञान।

वैसे तो शब्द पहले ही स्थान पर अनुभव में आ जाता है। परन्तु सबको जैसे राधास्वामी वाणी में लिखा है, एक जैसा अनुभव नहीं होता। मनुष्य की प्रकृति तथा संस्कारों की बात है। यह अध्यात्म का ज्ञान पूर्ण विवेकी और शब्द योग का अनुभवी महापुरूष ही जानता है। वैसे तो सभी महापुरूष जो जीव के कल्याण के लिए काम कर रहे हैं, धन्य हैं। जैसे :–

साध हमारे सभी भले, अपनी–अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, सबमें है शिरमौर।।

जहां तक मेरा अनुभव है तत्व ज्ञान के अनुभव के लिए सुरत शब्द योग जरूरी है। राधा स्वामी वाणी में जो शब्द हैं जैसे– घण्टा, शंख, ऊ, मृदंग, रारंग, सारंग, बंसरी और बीन आदि – यह सब सूक्ष्म लोक के शब्द है जो अलग–अलग अपने स्थान पर महत्व

रखते हैं। परन्तु इनके आगे का शब्द सार शब्द है जिसको अलख, अगम और अनाम भी कहते है। मैंने शुरू से ही केवल सार शब्द का अनुभव किया हैं। दूसरे शब्दों का कभी विचार ही नहीं आया है। मैं अपने गुरू महाराज जी के पास भी केवल एक ही विचार लेकर गया था कि भजन क्या होता है? गुरू महाराज जी से पहले कई और महात्माओं के पास भी यही प्रश्न लेकर गया था परन्तु उनके उत्तर से मुझे सन्तुष्टि नहीं हुई। अन्त में अपने गुरू महाराज पं० फकीरचन्द जी के पास गया और वहां यह गुत्थी सदा के लिए थोड़े ही समय में सहज में सुलझ गई जिसका अनुभव मैं अब 82 साल की आयु में सहज ही करता रहता हूं। कबीर साहब ने अपने शब्द में इस सार शब्द की चर्चा करते हुए कहा है कि – साधु सन्त ही इसके ग्राहक होते है। प्यारे सज्जनों! मुझे तो इसके बारे में यह मालूम ही नहीं था कि यही वह सार शब्द है। मैंने जब अपने गुरू महाराज जी को कहा कि मैं अपनी खोपडी के अगले भाग में एक अवर्णनीय आनन्द का अनुभव कर रहा हूं तो उन्होंने बताया कि यही वह भजन है जिसे तुम पूछना चाहते थे और इसी को धर्म में नाम कहते हैं। इसको हर समय मत सुनना, केवल सुबह शाम थोड़े समय सुनते रहना, एक दिन मंजिल पर पहुंच जाओगे। यह बात 1956 की है और तब से यह भजन या नाम मेरे साथ रहता है।

जैसे कहा है :–

न कुछ किया न कर सका, न करने योग्य शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, कहें कबीर कबीर।।

अभी तो कबीर साहब का जैसे प्रेम भक्ति का शब्द है – वैसा जीवन चल रहा है। आगे जो गुरू की मौज होगी, उसी में खुश हूं। जैसे –

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।

रहें आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी किया।

जो बिछुडे हैं प्यारे से, भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या।।

खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकती है।
हमन गुरू नाम सांचा है, हमन दुनिया से यारी क्या।।

न पल बिछुडे पिया हम से, न हम बिछुड़े प्यारे से।
उन्हीं संग नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या।।

कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक हैं, हमन सिर बोझ भारी क्या।।

पहले सन्त जो सत्संग कराते थे या ज्ञान देते थे, वह कविता रूप में या भजन रूप में गाकर अपना अनुभव साधु सन्तों को बताते थे। शायद यह उस समय आवश्यक हो। यदि किसी को अध्यात्म ज्ञान का रहस्य मालूम भी हो जाता था तो उसको मना कराते थे। जैसे कबीर साहब ने अपने शिष्य धर्मदास को सार भेद बताकर मना किया था।

''धर्मदास तोहे लाख दुहाई। सार भेद बाहर न जाई।''

इसी ही तरह राधास्वामी दयाल ने कहा है :–

''सन्त बिना कोई भेद न जाने, पर वह कहें अलग से तोहे।''

इस समय में इस रहस्य के पर्दे को मेरे गुरू महाराज जी ने हटा दिया और उन्होंने अपने सत्संगों व पुस्तकों में अपना अनुभव, रहस्य खोल कर साफ लिखा है जो इस समय की आवश्यकता थी। क्योंकि आज बुद्धि, विधा व विज्ञान के समय का मनुष्य इस रहस्य को साफ जानना चाहता है। इस रहस्य के कारण ही आज का मनुष्य

आगे खोज नहीं कर सका और जो बात या ज्ञान अनुभव करने का था, वह कथा–कीर्तन तक रूक गया। वैसे यह कथा–कीर्तन भी गलत नहीं है। यह सत्संग का एक भाग है और इससे मनानन्द मिलता है। परन्तु जो तत्व के अनुभव की बात है, वह स्वयं योग–साधन करके ही जानी जा सकती है। जैसे यह आत्मा तत्व क्या है? कहां से आता है? और आखिर कहां जाता है? जब मनुष्य अपने शरीर, मन, आत्मा और सुरत का योग साधन से अनुभव कर लेगा तब उसको पूर्ण शान्ति मिल जायेगी और यह चिन्ता, डर, भय, फिकर तथा सब प्रकार की दौड–धूप समाप्त हो जायेगी तथा जीवन में समता आ जायेगी। उसे जीवन का यह सब खेल समझ में आ जायेगा और उसकी जीवन लीला का सफर सुख व आनन्दमय बन जायेगा। वैसे मनुष्य कितना ही भजन–कीर्तन करें, सत्संग सुने परन्तु जब तक पूर्ण पुरूष से विधि सीखकर अनुभव नहीं करेगा, उसको शान्ति नहीं मिलेगी। अनुभव जरूरी है। क्योंकि अध्यात्म विश्वास और अनुभव का विषय है।

सतगुरू शरण

इस सार शब्द को जानने के लिए सतगुरू की शरण व उसका सत्संग सुनना आवश्यक है। यह बाहरी कर्मकाण्ड, पूजा–पाठ, जप–तप, तीर्थ–व्रत इत्यादि से आपका कल्याण नहीं हो सकता। जैसे कबीर साहब ने अपने शब्द में लिखा है –

''अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरू जुगत लखाई।।''

किरिया कर्म आचार मैं छोड़ा तीर्थ का नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।।

ना मैं जानू सेव बन्दगी, ना मैं घण्ट बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंहासन, ना मैं पुहुप चढाई।।

जो यह मूरत मुख से बोले, कर असनान न्हवाई।
पांच टका है देत ठठेरे, एकहिं हौं ले आई।।

ना हरि रीझै जप–तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाडे, ना पांचों के मारे।।

दया राखि धर्म को पाले, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सबन का जाने, ताहि मिले अविनाशी।।

सहै कुशब्द वाद को त्यागै, छोडे गर्व गुमाना।
सतनाम ताही को मिली है, कहे कबीर सुजाना।।

इस शब्द में कबीर साहब ने स्पष्ट कहा है कि यह सार शब्द या सतपद मनुष्य को तभी मिल सकता है जब वह अपने जीवन में प्राणियों के प्रति दया भाव रखे, अपने धर्म या कर्त्तव्य का पालन करे, जग के बन्धनों से उदासीन रहे, अपने जैसा जीव सबको समझे, कुशब्द को सहे, वाद–विवाद तथा अहंकार व अभिमान को त्यागे। परन्तु ये बातें जीवन में तभी आ सकती हैं जब मनुष्य किसी पूर्ण अनुभवी महापुरूष का सत्संग सुने और साधन अभ्यास करे। इसलिए सन्तमत में साधन के साथ–साथ सत्संग की महिमा है। जैसे इस शब्द में कहां है –

बहा सत्संग का दरिया, नहा लो जिसका जी चाहे।
जिगर से दाग पातक के, छुड़ा लो जिसका जी चाहे।।

भरे हैं रत्न बेकीमत, बड़े आला से आला हैं।
जरा इसमें लगा गोता, उठा लो जिसका जी चाहे।।

ऋषि–मुनियों ने भी गाई, बहुत कुछ इसकी जो महिमा।
लिखा वह पोथियों में है, पढा लो जिसका जी चाहे।।

दुखों से मुक्ति चाहता है, तो ए धर्मदास सतगुरू की।
शरण आ काल से फन्दा, छुड़ा लो जिसका जी चाहे।।

राधास्वामी योग का शब्द

चलो री सखी आज पिया से मिलाऊं, तन–मन–धन की प्रीत छुडाऊं।
पुत्र कलित्र जाल छुडवाऊ, सुन्न मण्डल धुन अजब सुनाऊ।।

गगन तखत पर जाय बिठाऊं, तीन लोक का राज दिलाऊ।
त्रिवेणी तीर्थ परसाऊं, मन माधो से खूंट छुडाऊ।।

काल चक्कर से तुरत बचाऊं, कर्म काट निज घर पहुंचाऊ।
महासुन्न और भंवर गुफा से, सतपुरूष दीदार कराऊ।।

दीन दूरबीन पुरूष एक ऐसी, अलख अगम के पार समाऊ।,
राधास्वामी पद हम जाना, कहन सुनन का लगा है ठिकाना।

जो व्यक्ति परमात्मा के दर्शन करना चाहते हैं उनके लिए इस ऊपर के शब्द में कहा है कि वे अपने तन–मन–धन का मोह न करें और इन्हें परमात्मा का मानकर ठीक रखें। साथ ही अपने पुत्र, स्त्री को भी परमात्मा की ही सम्पत्ति मानकर उचित सेवा करें। इस प्रकार जब मनुष्य सब कुछ ही गुरू व परमात्मा का समझ कर उसकी शरण हो जाता है तब ध्यान के समय उसका मन व सुरत एकाग्र होकर अन्तर में परमात्मा का धुनात्मक नाम सुनने लग जायेगा। आगे पूरे शब्द में ही योग की बातें लिखी हैं जो सच्चे भक्त या प्रेमी अपने अन्दर अनुभव करते हैं। इस शब्द को अनुभवी गुरू से ठीक समझ कर आप ध्यान लगाओगे तब आपकी समाधि लग जायेगी। पूर्ण अनुभवी गुरू की पहचान के लिए राधास्वामी वाणी में लिखा है:–

गुरू सोई जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नाही सेही।
शब्द कमावे सो गुरू पूरा, उन चरनन की होजा धूरा।।

और पहचान करो न कोई, लक्ष अलक्ष न देखो सोई।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे, शब्द कमाओ तुम तन मन से।।

अब वाणी में बहुत सुन्दर ढंग से लिखा है। परन्तु मेरा अनुभव यह है कि जब आप पूरी लगन से गुरू का सत्संग सुनेगे और गुरू पूर्ण अनुभवी व अभ्यासी है तो यह शब्द सहज ही आपको अन्तर में प्रकट हो जायेगा। और जब आप गुरू जी को अपना हाल बतायेंगे तब वह आपका उचित मार्गदर्शन कर देगा। यदि गुरू जी खुद ही इस अन्तर के शब्द का अनुभव नहीं रखते है तब वह शास्त्रीय ज्ञान व भक्ति की बातें करेंगे। इसीलिए कहा है –

झूठे गुरू को दुश्मन जान, उसको तज दे हो कल्याण।
सांचे गुरू की यह पहचान, चेला करे वह आप समान।।

सच तो यह है कि यह शब्द पहले से ही आपके अन्दर है। जब योग से आपका मन पवित्र हो जायेगा तब यह सहज ही अपने आप प्रकट हो जायेगा यह बाहर से नहीं आता है। बाहर से गुरू आपको संस्कार देता है और जब प्रेमवश या ध्यान की एकाग्रता से मन पवित्र होकर इक्ट्ठा होता है तब यह सार शब्द सहज ही खुल जाता है। बाहर का गुरू जो खुद इस शब्द का अभ्यासी और अनुभवी होगा, वह आपकी बुद्धि को निश्चयात्मक बना कर, विश्वास दिलाकर मार्गदर्शन करेगा। यानी आपको मन लगा कर अभ्यास में यह शब्द धुन सुनने का आदेश आपकी योग्यता व अधिकार, संस्कार के अनुसार बता देगा। इसलिए बाहरी गुरू का महत्व है। यदि किसी को बाहरी पूर्ण गुरू नहीं मिलता तो वह लाख कोशिश करें, अन्तर में उसे इस सार शब्द का भेद नहीं मिलता। हां, उसके श्रद्धा–विश्वास से अन्तर में गुरू, पीर या देवी–देवता का रूप प्रकट हो सकता है परन्तु यह रूप उसके मन का ही होगा जो इस अवस्था का भेद नहीं दे सकता।

इसीलिए कहा है :–

बिन गुरू कर्म न धर्म कुछ, बिन गुरू भक्ति न ज्ञान।
जन्म–जन्म जम फांस है, गुरू बिन नहीं निर्वाण।।

बिन गुरू घट में राह न चलना।
राह में विध्न अनेकन मिलना।।

इसलिए किसी ऐसे सतगुरू की शरण लो जो चौथे पद में या इस सार शब्द में रहता हो। उसकी संगत करने से रेडियेशन के नियम के अनुसार तुम में परिवर्तन आ सकता है और तुम्हारा कल्याण हो सकता है। क्योंकि यह अटल नियम है कि जिससे प्रेम करोगें वैसे ही हो जाओगें। ऐसे सतगुरू का दर्शन करना, वचन सुनना, आज्ञा का पालन करना मुख्य है। फिर हमेशा सतगुरू आपका रक्षक है।

जैसे :–

सतगुरू बहुरि जीव के रक्षक, तिनसे कर सुमिताई हो।
तिनके मिले परम सुख उपजे, पद निरवाणा पाई हो।।

और यदि आप अपनी सांसारिक जरूरतों के लिए गुरू के पास जाते हो तो रोज–रोज उनका सत्संग सुनते रहो, इससे तुम्हारी दुनिया भी बन जायेगी और दीन भी। जैसे –

सत्संग करत रहो मेरे भाई।
तेरी सहज–सहज बन जाई।।

मेरा तो गुरू कृपा से सहज ही काम बन गया और आज दिन तक मैं उस सार शब्द का सहज में अनुभव करता हुआ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा हूं। कल का कुछ कह नहीं सकता।

मेरी धार्मिक (अध्यात्म–सम्बन्धी) खोज

आदि काल से अध्यात्म विषय में जिन महापुरूषों ने आत्मा–परमात्मा की खोज की है, वह मेरे अनुभव के अनुसार अन्धों के हाथी के समान है। कहते हैं कि कुछ अन्धे एक हाथी को अपने

हाथों से छूकर जानना चाहते थे कि यह क्या है? उन्होंने हाथी के जिस–जिस अंग को हाथ लगाया, उसे छूकर उसे वैसा ही समझा। किसी के हाथ में हाथी की सूंड आई तो उसने उसे नरम या मुलायम बताया। किसी के हाथ में दांत आया तो उसने उसे कठोर बताया। किसी के हाथ में कान आया तो उसने उसे छाज के समान बताया और किसी के हाथ में पैर आया तो उसने उसे खम्भे के समान बताया। यानी जो–जो अंग उनके हाथ आया, उन्होंने उनकी उसी तरह व्याख्या कर दी कहने का भाव यह है कि परमात्मा एक बहुत महान् शक्ति है। उसका भेद कोई नहीं जान सकता है। मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं कि वह उसको जान सके। जो–जो महापुरूष उसकी खोज में लगे वह अपने आप उसमें लीन हो गए।

मैंने इस मार्ग पर सहज में योग–अभ्यास करते हुए यह समझा है कि मनुष्य इस शरीर में जीवन जीते हुए अपने अनुभव को अपनी प्रकृति व संस्कार के अनुसार ही बता सकता है। यह दावा करना कि मेरा अनुभव ही सच है, उसकी भूल है। मानव ने आज तक जो खोज की और अनुभव किया वह साफ नहीं बता सका। इसका कारण जो मैंने समझा है वह यह है कि जब कोई सज्जन आत्मा–परमात्मा के ज्ञान के लिए योग साधन करता है तब उसका मन एकाग्र हो जाता है और उसकी ध्यान समाधि भी लग जाती है। इस योग से मन, वचन और कर्म शुद्ध तथा पवित्र हो जाते हैं और उसे नई–नई सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इन सिद्धियों से प्रभावित होकर लोग उस सज्जन की तन–मन–धन से सेवा करते हैं और बहुत सम्मान देते हैं। अब यदि वह महापुरूष अपना अनुभव सच्चाई से साफ बतला दे तो लोग जो अन्ध विश्वास में रहते हुए उसकी तन, मन, धन की सेवा करते हैं और सम्मान करते हैं वह इतना नहीं करेंगे। आज चारों तरफ महात्माओं के पास लोगों की भीड़ का यही

मुख्य कारण है। मेरा कहने का भाव यह है कि धर्म आज तक रहस्य में रहा है और अब भी इस धर्म को रहस्य में ही रखा जा रहा है।

मेरे गुरू महाराज पण्डित फकीरचन्द जी पूरे विश्व के महात्माओं में पहले ऐसे महापुरूष हुए हैं जिन्होंने प्रमाण दे–देकर इस धर्म के रहस्य को खोला है। और दूसरा, मैं सेना में अधिकारी पद पर सेवा करते हुए, इस योग–साधन का अनुभव करते हुए इस धर्म के रहस्य को खोल रहा हूं। अब आप यह जानना चाहेंगे कि वह रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि हर मनुष्य के मन में बहुत बड़ी सिद्धि, शक्ति है जिसे वह जानता नहीं है। और इसी अज्ञानता के कारण वह इस सिद्धि, शक्ति के लिए देवी, देवता, तीर्थो में तथा पण्डित, पुरोहित, ज्योतिषी, महात्मा, मुनि तथा गुरूओं के पास नाक रगड़ता चला आ रहा है। ये पूज्य महापुरूष जो अब मनुष्य शरीर में हाजिर हैं, जीव को सच्चाई बताकर, उसके भ्रम–शंका दूर करके धर्म–कर्म का सच्चा रास्ता बता सकते है। देवी–देवता या गये हुए अवतार, पीर, पैगम्बर, गुरू जो अब शरीर में हाजिर नहीं हैं वे मनुष्य को सच्चाई नहीं बता सकते और न ही उसके भ्रम–शंका को दूर कर सकते हैं। जो शास्त्र या पुस्तकें उन्होंने लिखी हैं, वह पवित्र हैं परन्तु वह उस समय जो मनुष्य उनके पास थे, उनके विशेष लाभ की बात थी। आज के मनुष्य की प्रकृति, संस्कार व समस्याएं और हैं। उनको आज का जीवित महात्मा ही उनका हाल जानकर सही समाधान कर उन्हें सन्तुष्ट कर सकता है। जैसे रोगी का उपचार मरा हुआ डाक्टर या वैद्य नही कर सकता। उसका इलाज तो अब हाजिर का वैद्य या डाक्टर ही, उसके रोग को जानकर, कर सकता है।

मैं 1962 से गुरू आज्ञा से यह सत्संग करा रहा हूं। जिन सत्संगियों का मेरे प्रति श्रद्धा व विश्वास बन जाता है तो उनके ध्यान

में मेरा रूप प्रकट होकर तरह–तरह से उनकी सहायता करता है। किसी को होने वाली बात पहले ही बता देता है, किसी को दुर्घटना में बचा लेता है, तो किसी को मरने से पहले ही बता देता है कि अमुक दिन तुझे लेने आऊंगा और ऐसा ही होता है परन्तु मुझे इन घटनाओं के बारे में तब मालूम होता है जब श्रदालु मुझे फोन पर बताते है या पत्रों में लिखते हैं या फिर जब वो मुझसे मिलते है तब बताते हैं। प्यारे सज्जनों! इस विषय में मेरा यह अनुभव है कि यह शक्ति मेरे में नहीं है अपितु उन विश्वास रखने वाले श्रद्धालुओं के मन में है। उनका ही मन मेरा रूप प्रकट करके उनकी मदद कर देता है और यदि उनका मन पवित्र है तो होने वाली बात पहले ही बता देता है। इस बात को न राम न कृष्ण न अन्य कोई देवी–देवता आकर अपने भक्तों को बता सकता है और न ही कोई गया हुआ गुरू। यह सच्चाई तो हाजिर वक्त गुरू ही मनुष्य को सत्संग करा कर समझा सकता है कि यह सहायता करने वाली शक्ति उसी के अपने मन का विश्वास, आधार व निज रूप है, जो प्रत्येक प्राणी के भीतर विद्यमान है। बाहरी पूर्ण पुरूष केवल संस्कार देता है और वह संस्कार ही मनुष्य के अन्दर उसके अपने विश्वास व श्रद्धा के अनुसार प्रकट होकर उसकी सहायता करता है।

कई बार भक्त के अन्दर देवी, देवता, पीर, पैगम्बर या गुरू प्रकट होकर उसे उल्टी–सीधी बात कह देते हैं और कोई रूप प्रकट होकर उनसे बच्चे की बलि मांगते है तो भक्त समस्या में पड़ जाते है। और कुछ तो अज्ञानता के कारण अपने बच्चों की बलि दे देते हैं। अब इस बात का स्पष्टीकरण देवी–देवता या गये हुये गुरू–पीर नहीं कर सकते। पूर्ण अनुभवी वक्त गुरू उस भक्त या विश्वासी को यह समझा देगा कि देवी–देवता या कोई अन्य इष्ट कभी गलत बात नहीं कहेगा। देवी या देवता किसी को दुख नहीं देते। देवी या देवता का

मतलब सुख देने वाला। यह तो तेरा अपना ही मन है जिसने ऐसी बात कही है। अगर यह मन पवित्र है तो जो बात इष्ट प्रकट होकर कहेगा वह सही होगी और यदि मन अपवित्र है तो वह जो कहेगा वह गलत होगी। खेल सब आस–विश्वास व मन की पवित्रता का है। इसलिए सत्संग में मन की पवित्रता पर जोर दिया जाता है। योग–अभ्यास की भिन्न–भिन्न विधियों का प्रयोग इस मन को पवित्र करने के लिए हमारे अनुभवी महापुरूषों ने बताए हैं।

धर्म में यह रहस्य बहुत पहले से चला आ रहा है। विश्वासी भक्त यह समझता है कि बाहर से उसका इष्ट जिस रूप में वह मानता है वह आया है। गुरू का भक्त समझता है कि गुरू जी आए हैं। जब मैं जीवित कहीं नहीं जाता हूं और जगह–जगह मेरा रूप प्रकट होकर भक्तों की मदद करता है तो मैं यह कैसे मान लूं कि बाहर से कोई गुरू उनकी मदद के लिए जाता है और यदि कोई जाता है तो वह इसका स्पष्टीकरण करे। मैंने कई पूज्य महात्माओं से यह बात पूछी है कि मैं तो किसी के अन्तर प्रकट होकर उसकी मदद नहीं करता हूं। क्या आप अपने भक्तों में प्रकट होकर उनकी मदद के लिए जाते है? मुझे तो उन्होंने यही कहा कि हम भी कहीं नहीं जाते हैं। यह तो उन्हीं के विश्वास का फल होता है। कुछ महात्माओं को पत्र लिखकर भी मैंने यह बात पूछी है। जवाब में किसी ने तो उत्तर ही नहीं दिया और किसी ने कहा कि आप ठीक कहते हैं। परन्तु अपने सत्संगों में कोई महात्मा सज्जन यह बात नहीं कहता है कि मनुष्य का मन ही विश्वास के अनुसार अपने इष्ट को प्रकट कर उसकी सहायता करता है। बाहर से कुछ नहीं आता है। शायद इसके लिए जीव अधिकारी नहीं है या फिर ऐसा स्पष्ट कहने से शिष्यों की भीड़ कम हो सकती है, और उनका मान–सम्मान कम हो सकता है। या कोई और अन्य कारण हो सकता है जो मुझे ज्ञात नहीं है। मैं यह

सच्ची बात इसलिए कहता हूं कि इस सच्चाई को जाने बिना मनुष्य का कल्याण नहीं है और न ही ये भिन्न–भिन्न धर्म सम्प्रदायों के आपसी झगड़े इस रहस्य को जाने बिना समाप्त हो सकते हैं। दूसरा मेरे गुरू जी की भी यही इच्छा थी कि मैं अपना अनुभव सच्चाई से वर्णन करूं। इसलिए मैं अपने सत्संगों और पुस्तकों में साफ उदाहरण दे–देकर उन भक्तों का नाम बताकर इस सच्चाई को बता देता हूं और न ही किसी को चेला बनाता हूं तथा न किसी से तन व धन की सेवा लेता हूं। इस बात के लिए मैंने अपना कोई आश्रम नहीं बनाया क्योंकि मैं आश्रमों को बन्धन का कारण मानता हूं परन्तु मैं इनका विरोध भी नही करता हूं। मैं सभी गुरूओं के आश्रमों को अपना ही समझता हूं। मेरे इस स्पष्ट वर्णन से हो सकता है कुछ लोग मुझे अहंकारी समझते हों। परन्तु मैं अहंकारी नहीं हूं , केवल अपनी बात सच्चाई के साथ कहता हूं।

और जहां तक प्रसाद वाली बात है, वह भी भक्तों के विश्वास का ही खेल है। सत्संगी मुझसे प्रसाद बनवा कर ले जाते है और उनका जो वह चाहते हैं, काम हो जाता है। परन्तु मैं तो अपनी बात जानता हूं कि मेरे अन्दर कोई रिद्धि–सिद्धि नहीं है। यह भी उनके ही विश्वास का फल होता है। क्योंकि यदि मेरे में रिद्धि–सिद्धि होती तो कुछ लोग जो मेरे से प्रसाद ले जाते हैं उनका भी काम होना चाहिए था जो कि नहीं होता है। और दूसरा मैं अपने घरवालों व गांव वालों को ही निहाल कर देता यदि मेरे अन्दर कुछ होता। यह सब तो विश्वास, ध्यान व निश्चयात्मक बुद्धि का खेल है। जिसका अपने इष्ट के प्रति पूर्ण विश्वास व ध्यान है और वह अपने गुरू की बात को शत–प्रतिशत सही मानता है तो उसका काम बनते देर नहीं लगती और यदि ऐसा नहीं है तो उसका काम हो भी सकता है और नहीं भी। बात विश्वास व ध्यान की है। वक्त गुरू तो शुभ भावना व आशावादी विचार देता है। काम तो भक्त के विश्वास ने करना है।

दूसरा मेरा अनुभव यह है कि यदि कोई सच्चा जिज्ञासु है और उसे कोई पूर्ण अनुभवी गुरू मिल जाता है जिसे वह पूर्ण मान लेता है तो उसके सामने सभी विचारों को छोड़ने पर वह सीधा सबसे ऊंचा अनुभव कारण लोक का कर सकता है। इस बात का प्रमाण मैं स्वयं हूं। मुझे किसी कारण से सेना में नौकरी करते–करते इस नाम या भजन को जानने की सच्ची लगन लगी और मैं इसे जानने के लिए कई महात्माओं से मिला परन्तु मुझे सन्तुष्टि नहीं हुई परन्तु जब मैं पूर्ण अनुभवी अपने गुरू महाराज पं0 फकीरचन्द जी से मिला तो 15–20 मिनट में ही उनकी रेडियेशन से यह अनुभव मुझे हो गया और अब 82 साल की आयु में भी वहीं अनुभव सहज में संसार के सब काम करते हुए कर रहा हूं। और गुरू जी की आज्ञा से यह चमत्कार जो लोगों के साथ नए–नए घटित हो रहे हैं तथा अपने साधन की अनुभूति सत्संगों में साफ बताता आ रहा हूं क्योंकि साधकों व भक्तों के लिए यह बहुत ही आसान विधि है। इसमें कुछ देर या समय लगने की बात नहीं है। यह तो इच्छा, लगन व मन में तड़फ की बात है। यह योग साधन बहुत सहज है। इसमें कुछ यत्न नहीं करना पड़ता।

मैं अधिक समय सहज समाधि में रहता हूं। इसमें मुझे कुछ करना धरना नहीं पड़ता। खाते, पीते, चलते–फिरते, दुनिया का हर काम करते हुए सहज ही वह राम नाम गूंजता रहता है जिसको कहा है :–

''सहजे ही धुनि होत है, हरदम घट के माहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहि।।''

''शब्द भेद तब जानिये, रहे शब्द के मांहि।
शब्द से शब्द प्रकट भया, दूसरा देखे नांहि।।''

यानी सहज ध्वनि (Unbrekable sound) गूंजती रहती है। यह बात शास्त्रों में तो आती हैं लेकिन अभी कोई महात्मा न तो अपने प्रवचनों में यह बात कहता है और न किसी पुस्तक में लिखता है। यह जो कबीर साहब ने कहा है :–

शब्द माहिं सुरत राखिए, तब पहुंचे दरबार।
कहें कबीर तहां देखिए, बैठा पुरूष हमार।।

मैं समझता हूं कि इस समय यह कबीर साहब वाला अनुभव मेरा नया है। हो सकता है और बहुत से महात्मा इस सहज नाम का अनुभव करते हो परन्तु न तो मैं उसे किसी सत्संग में सुनता हूं और न किसी साहित्य में देखता हूं, केवल कबीर साहब की वाणी ही सब दोहराते हैं। मेरा यह दावा नहीं है कि यह सहज समाधि या सहज योग और कोई दूसरा अनुभव नहीं करता हो। परन्तु अधिकतर मैं यही देखता हूं कि अपना तो किसी का अनुभव है नहीं, केवल शास्त्रों या पिछले महापुरूषों की कथाओं को ही ये महापुरूष बताते रहते हैं। यह अध्यात्म ज्ञान अनुभव का विषय है और इस अनुभव को यदि साफ शब्दों में ईमानदारी से नहीं बताया जायेगा तो इसका फायदा क्या है? अतः इन सभी महात्माओं से मेरी यह प्रार्थना है कि जो कुछ उन्हें अनुभव हुआ है, उसे वह अपने प्रवचनों में व पुस्तकों में साफ बतायें ताकि धर्म के विषय में किसी प्रकार का भ्रम या शंका न रहे। और यदि किसी भी सम्प्रदाय के महात्मा या आचार्य को जो मानव जाति को ज्ञान देने की सेवा कर रहे हैं, किसी भी तरह की शंका या भ्रम हो तो वे किसी भी तरह का विचार किए बिना, निसंकोच मुझे सेवा का अवसर दें। यह कोई अहंकार की बात नहीं है। और फिर यह मेरा ही नहीं अपितु आज के सभी अनुभवी महापुरूषों का परम कर्त्तव्य है कि वे हमारे सभी उन प्यारे सज्जनों का जो धर्म–कर्म का

कार्य कर रहे हैं और जिन्हें तत्व ज्ञान का अनुभव नहीं है या उन्हें कोई शंका या भ्रम है तो उनकी सहायता कर उनका मार्गदर्शन करें ताकि जो भक्त या प्रेमी उनके साथ लगे हैं, उनका कोई अकाज न हो। लेकिन यह तभी होगा जब सभी महापुरूष आपस में एक–दूसरे के प्रति प्रेम–भाव रखें और समय–समय पर आपस में मिलकर विचार–विर्मश करें व अपना अनुभव बांटे।

सारांश यह है कि यह आत्मा–परमात्मा का ज्ञान केवल अनुभव का विषय है। ये जितने साधक व खोज करने वाले योगी आज तक हुए हैं, सबने अपने–अपने अनुभव लिखें हैं। हर मनुष्य की प्रकृति, संस्कार व कर्म भिन्न–भिन्न होते हैं इसलिए उनके अनुभव भी उनकी प्रकृति के अनुसार भिन्न–भिन्न ही होगें। और यह अनुभव इस मनुष्य शरीर के रहते ही किया जा सकता है। शरीर छोड़ने के बाद वाली मुक्ति की बात मैं नहीं कह सकता हूं। हां, अनुमान किया जा सकता है परन्तु वह अनुभव नहीं है। अनुभव तो हम जीवित रहते हुए ही कर सकते है। जैसे कबीर साहब ने कहा है –

जाको दर्शन इत है, ताको दर्शन उत।
जाको दर्शन इत नहीं, ताको इत न उत।।

मैं 1962 से इस मुक्त अवस्था का जिसे निवार्ण या मोक्ष कहा है, अनुभव करते हुए जीवन जी रहा हूं। कभी–कभी इस मुक्ति पद से नीचे गिर जाता हूं तो फिर सहज ही वापिस उसी अवस्था में आ जाता हूं। यह मेरा रोज–रोज का अनुभव है। यह मैंने अपना निज अनुभव लिखा है और मेरा अनुभव कबीर साहिब की, दाता दयाल की वाणियों से मेल खाता है। लेकिन फिर भी मेरा कोई दावा नहीं है।

****

आरती

आरती सतगुरु देव की कीजे।
तन–मन–धन सब अर्पण कीजे।
जीवन जन्म सफल कर लीजे।।

ज्ञान प्रेम की मूर्त स्वामी, समदर्शी और अन्तर्यामी। निरखत नैन सफल कर लीजे। आरती सतगुरु.....

अति उत्तम वाणी की शोभा, जाको सुनत मेरा मन लोभा होए विमल मति भव दुख मत दीजे। आरती सतगुरु.....

राम ब्रहम विभु श्रुति जो गावें, सोई मेरे सतगुरु रूप बनावे। झरत सदा अमृत रस पीजे। आरती सतगुरु.....

कर जोड़े हम शीश नवाएं, बार–बार यही विनय सुनावे। भक्ति आनन्द गुरु जी मोहे दीजे। आरती सतगुरु.....

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

क्र.सं.	पुस्तक का नाम	प्रथम संस्करण	द्वितीय सं०	तृतीय सं०
1.	लाल कमल	1000 प्रतियां 4/03	2000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 12/06
2.	सहज योग	2000 प्रतियां 8/03	3000 प्रतियां 8/05	---
3.	सुखी जीवन का रहस्य	3000 प्रतियां 10/03	4000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07
4.	मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान	4000 प्रतियां 1/04	4000 प्रतियां 9/05	---
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 प्रतियां 3/04	4000 प्रतियां 9/05	---
6.	मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म	4000 प्रतियां 6/04	4000 प्रतियां 2/07	---
7.	प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा	4000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 2/07	---
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 प्रतियां 5/05	4000 प्रतियां 2/07	---
9.	ज्ञान योग	4000 प्रतियां 4/06	---	---
10.	तत्व ज्ञान दर्पण	4000 प्रतियां 5/06	---	---
11.	Secret of Happy Life	2000 प्रतियां 4/05	2000 प्रतियां 2/07	---